शाक्त-उपपुराणों का चर्या निर्देश

यदि क्रियापाद में मन्दिर एवं मूर्ति आदि के निमार्ण की विधि का वर्णन पाया जाता है तो चर्यापाद में विभिन्न क्रियाओं,उत्सवों एवं समाजिक कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है।

यह भी सत्य है कि प्रत्येक तन्त्र में चार पाद नहीं मिलते।

तन्त्र में ही अन्तिम चरण चर्यापाद पूजा के क्रिया कलापों का विवेचन करता है जो कि साधक को उसकी उपासना के महत्वपूर्ण मार्ग के रूप में उपदिष्ट है।

तन्त्र के उपासना की सूक्ष्मताओं का ध्यानपूर्वक विकास किया है और प्रत्येक वृत्ति और कर्म को प्रतीकों के वैभव से पूर्ण किया है।

चर्यावाद केवल साधना की रीतियों का निर्माण ही नहीं करता प्रत्युत्साधक एवं आचार्यों के लिए आचार्य पद्धति का भी प्रतिपादन करता है। कोई भी नियम सभी के लिए उपदेय नहीं हो सकता; क्योंकि मानव विभिन्न रूपों में प्राकृतिक है और लोगों के विकास के विभिन्न स्तर हैं और योग्यता की दृष्टि से भी विभिन्नतायें हैं। एक आचार-पद्धति सभी के लिए निर्धारित नहीं की जा सकती।

शक्ति उपासना तथा उसका स्वरूप

''माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''[1] ''मातृ देवो भव'' तथा शक्ति के स्वरूप का विशद वर्णन ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के सूक्तों में देवी के स्वरूप का उल्लेख होनें के आधार पर स्पष्टतः यह ज्ञात होता है कि वैयक्तिक मातृ शक्ति का विस्तार तथा सार्वभौमिकता का बोध वैदिक काल में भी उपलब्ध था। पाश्चात्य जगत में शक्ति उपासना का सर्व प्रथम उल्लेख ''चार्ल्स ईलियट'' (द्वारा लिखित 'हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म) नामक पुस्तक में शक्ति उपासना का प्रथम उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति का वास्तविक स्वरूप पाश्चात्य जगत को शक्ति की उपासना का ज्ञान नहीं था। इसका कारण यह था कि उस समय तक पाश्चात्य जगत स्त्री को केवल भोग की वस्तु ही माना था किन्तु यदि हम विश्व के प्राचीनतम इतिहास पर एक विहङ्गम दृष्टिपात करे तो यह प्रतीत होता है कि देवी की उपासना किसी न किसी रूप में विश्व के प्राचीन देशों में प्रचलित थी। आदिवासियों में ही इस संस्कृति का प्रचार नहीं था अपितु 'मिश्र' आइसिस,चीन, में क्वनाम,बेबिलोनिया में ईव'तथा रोमन कैथोलिक ईसाइयों में मैडोना नामक देवियों का सामान्य रूप से शक्ति के रूप में प्रयोग किया जाता था। इतना ही नहीं प्राचीन अरब में इस्लाम धर्म के पूर्व १८ देवियों की पूजा का प्रमाण प्राप्त होता है। जिसमें लात नाम की देवी को सर्व प्रसिद्ध माना जाता था। उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट हैं कि जननी के रूप में मातृ शक्ति को मान्यता प्राप्त थी (महानिर्वाण तन्त्र) जिसका प्रकाशन आर्थर एवलन ने किया था जिसमें देवी उपासना का स्पष्ट स्वरूप वर्णित है।

---

[1] अथर्ववेद १२/१२

मोक्ष का आधार देवी स्वरूप को मिथिला तथा बङ्गाल में प्राप्त हो चुका था। इससे यह ज्ञात होता है कि भारत वर्ष में इस उपासना पद्धति का कोई न कोई स्वरूप प्रचलित था।

इ 'शक्ति' का अर्थ 'सामर्थ्य' होता है जिसके कारण 'सार्वभौमिकता' के रूप में 'देवी' शब्द का प्रयोग होता है। 'देवी' शब्द दिव् धातु से 'प्रकाशन' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'प्रकाशन' का अभिप्राय उस 'शक्ति' से है जिसके द्वारा मनुष्य 'मोक्ष' या 'आनन्द' को प्राप्त करता है। शास्त्रों के रचयिता वेदों में विश्वास करते हैं। वेद ऋषियों को साक्षात्कृत हुआ है। भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक तथा भौगोलिक जीवन 'वेद' के आदर्शों पर ही आधारित थे। कुछ लोग यह मानते थे कि 'वेद' एक ही है, जबकि भारतीय शास्त्रों के अनुसार ''अनन्ता वै वेदाः'' 'वेद' शब्द राशि है। शब्द को 'वाक्य' कहते है,वाक्य को 'लैन्टिग' भाषा में 'लोगोस' कहते हैं।दोनों का अभिप्राय एक ही है।

भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीयम् में-

अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[१]

कहकर 'वाक्' शक्ति का उल्लेख किया है,और इस शक्ति को जन्म मरण रहित माना है,तथा इसी से जगत की प्रक्रिया का विकास भी माना है।

जगत को दो रूपों में देख सकते है,एक 'स्थूल' जो प्रकृति के स्वरूप से दृष्टिगत होता है। दूसरा 'आध्यात्मिक' जो 'अन्तःकरण' के विचार का मूल है।

---

[१] वाक्पदीय श्लो.१

आज की भाषा में इसको ‘मेन्टल’ (मानसिक) तथा फिजिकल ‘स्थूल’ सृष्टि के रूप में अभिहित किया जाता है। इन दोनों विकासों के मूल में सर्वव्यापक नित्य ‘दैवी’ शक्ति ही है। भारत वर्ष में ‘आगमिक’ अथवा ‘तान्त्रिक’ साधना के पाँच प्रमुख सोपान अनादि काल से प्रचलित है,जिनमें सौर,गाणपत्य,वैष्णव,तथा ‘शाक्तमत’ प्रधानरूप से प्राप्त होते हैं। इन साधनाओ के प्रचलन का अनुमान ‘हडप्पा मोहनजोदडों की खोदाई में प्राप्त मूर्तियों को देखने से इसकी पुष्टभूमि प्रतीत होती है।

इतना ही नही वैदिक सूक्तियाँ तथा कुछ प्रार्थनाएँ भी इसकी ओर इन्गित करते है, जैसे-माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः,देवी अथर्वशीर्ष और श्रीसूक्त आदि इस बात के प्रमाण है।

मातृ शक्ति का आध्यात्मिक स्वरूप सदा ही मानव जीवन को समुचित सामाजिक स्वरूप देने में अपनी भूमिका निभाता रहा है। शक्ति का अभिप्राय है सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्यापक सत्ता जिसमें चराचर विश्व की उत्पत्ति होती है।

यदि इसपर गम्भीरता से विचार किया जाय तो ‘शक्ति’ के अतिरिक्त विश्व में कुछ भी नही है। वह चेतन तथा स्थूल मूल पदार्थों का मूल तत्त्व है। क्योंकि व्यक्त ‘संसार’ जहाँ एक ओर ‘मस्तिष्क’ या ‘मन’ है तो दूसरी ओर वह ‘स्थूल’ तत्त्व भी है।

इन दोनों का मूल तत्त्व है मन,मन से अभिप्राय ‘विचार’ इच्छा करना कल्पना आदि से है। दूसरी ओर जो भौतिक तत्त्व है उसका अनुभव तथा ज्ञान सभी को प्रकृति के सौन्दर्य में दृष्टि-गत होता है।

देवी उन दोनों में समान रूप से परिव्याप्त ही नही बल्कि वह सबसे परे भी है। 'त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्' वेद की यह उक्ति यही परिलक्षित करती है।[१] इसलिए इस शक्ति को चिच्छक्ति कहा जाता है। दूसरी ओर इसे माया भी कहा जाता है। माया शब्द का अभिप्राय ''मीयते अनेन इति माया'' अर्थात् 'स्थूल' तथा 'सूक्ष्म' दोनों ही जगत के स्वरूप को 'शक्ति' ने अपने में समाहित कर रखा है।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में दार्शनिकों के दो मत है, प्रथम मत वह यह मानते है कि केवल 'चित्शक्ति' ही सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान सृष्टि का प्रादूर्भाव करने में समर्थ है, शेष पदार्थ जो बाह्य जगत में दिखाई देते है वे केवल उस 'शक्ति' की छाया है। इस मत को 'अद्वैत' कहते है। दूसरा मत यह प्रकाशित करता है कि 'शक्ति' तथा 'शक्तिमान' दोनों को योग से 'विश्व' की रचना होती है।इसमें 'शक्ति' सर्व व्यापक है, और वह प्रेरक के रूप में 'शिव' का आह्वान करती है। क्योंकि वह पृथक् 'विश्व' की संरचना नही कर सकती।

दूसरे शब्दों में इसको 'मातृ' प्रकृति कहते है क्योंकि 'शक्ति' सर्व व्यापक नित्य तत्व है,प्रकृति उसका शरीर है। प्रकृति 'शक्ति' का ज्ञान यदि हम किसी हरे-भरे सुरम्य 'वाटिका' की तरफ ध्यान दे तो उसमें एक प्रकार का चैतन्य दिखाई देता है। ''सर जगदीश बोस'' ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के पौधौ में हृदय की गति को देखने का प्रयास किया था। इसीलिए जितनी भी जीवन्त 'शक्तियाँ' दृष्टिगत होती है वे सभी उसी 'शक्ति' के परिणाम है।

---

[१]शुक्लयजुर्वेद.अ. ३१/१

कुछ ऐसे पदार्थ है,उनमें 'शक्ति' का बोध नहीं होता जैसे 'पत्थर' किन्तु अव्यक्त रूप में 'पत्थरों' में भी उसका अस्तित्त्व निहित है। गीता में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए भगवान् 'श्रीकृष्ण' ने कहा है कि -'मम योनि महद् ब्रह्म[1]

इस 'शक्ति' से 'विश्व' का विकास दो प्रकार से माना गया है। प्रथम विकास 'स्थूल' से 'सूक्ष्म' का है,इस विकास को 'वामगतिक' जैसे पहले 'शक्ति' से 'स्थूल' पदार्थ फिर 'अर्ध विकसित' पौधा तत्पश्चात पौधौ में 'प्राणशक्ति' और प्राणशक्ति का विस्तार 'चित्शक्ति' के रूप में होता है।

दूसरे प्रकार का विकास 'चित्शक्ति' से 'स्थूल' की ओर होता है इसे 'दक्षिणगतिक' विकास माना गया है।

इस विकास में 'शक्ति' वह श्रोत है जिससे 'ब्रह्माण्ड' का विकास हुआ है। अर्थात् सम्पूर्ण 'ब्रह्माण्ड' चेतन तथा अचेतन 'शक्ति' में मूल रूप से समाहित है, जैसे 'बट' बीज में 'बट' इस प्रकार समाहित 'शक्ति' को 'बिन्दु' कहा गया है। सम्पूर्ण 'ब्रह्माण्ड' 'मन्वन्तरादि' इसी में समाहित रहते है। और 'बिन्दु' बिस्फोट से उनका निर्माण होता है।

''डॉ.भूपेन्द्र कुमार मोदी'' ने अपनी पुस्तक ''हिन्दुइज्म दी यूनिवर्सल ट्रूथ'' में इस 'बिन्दु' विस्फोट की तुलना 'विग्बैंग' सिद्धान्त से किया है। १९४६ में 'जार्ज गमोक''आर.ए.अल्फर' के साथ मिलकर सृष्टि के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। जिसे विश्व के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया था।

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता अ. १४/३

इस सिद्धान्त का मानना है कि जब कुछ 'पदार्थ' एक ही में समाहित रहते है तभी उनमें 'विस्फोट' के द्वारा ही अलग-अलग विखर जाते है। भारतीय सिद्धान्त ने इसे 'बिन्दु' विस्फोट माना है। सृष्टि के प्रारम्भ में 'शून्य' तथा 'सूर्य' के अन्दर हुए विस्फोटों से सृष्टि की 'आणविक' शक्तियों ने विखर कर नाना रूप ग्रहण किया।

भारतीय मान्यता के अनुसार सर्वशक्तिमान 'ब्रह्मा' का एक दिन सहस्त्रों वर्षों का होता है, इसके पश्चात 'प्रलय' होता है,प्रलय काल में सभी 'शक्तियाँ' समाहित होकर एक 'बीज' के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। इस 'प्रलय' काल में सर्व प्रथम 'स्थूल' पदार्थ गलित होता है। तत्पश्चात जीवन तथा मन का उसमें

समाहार होता है। ये सभी मिलकर 'तिरोहिताऽवस्था' को प्राप्त हो जाते है। जिससे अग्रिम सृष्टि का बन सके ।

इस अवस्था को 'बिन्दु' कहते है। इस 'बिन्दु' में सभी पदार्थ 'शान्तावस्था' में तबतक पड़े रहते है जबतक 'ब्रह्मा' की रात्रि समाप्त न हो। और उसका प्रभात प्रारम्भ न हो।यहीं 'बिन्दु' का स्वरूप सार्वभौम का 'गर्भ' या 'योनि' है । जिसमें 'सर्जक' तथा 'विसर्जक' दोनों ही 'शक्तियाँ' समाहित है। 'ईसाई धर्म' में इसे 'लोगस' कहा है। जिसका अर्थ 'ध्वनि' होता है। और इसी के विस्फोट से 'विश्व' का प्रादूर्भाव होता है। इसी से सभी 'आध्यात्मिक' शक्तियाँ उत्पन्न होती है। जिसके विभिन्न सोपान मन,जीवन तथा 'स्थूल' पदार्थ सभी समाहित है ं। 'देवी' इन सभी में 'अनूस्युत' है।सम्पूर्ण सृष्टि के अतिरिक्त भी वह 'वर्तमान' रहती है। इसी हेतु उसे विश्व का 'उपादान' कारण भी माना जाता है। उसका चेतन स्वरूप ही विश्व के निर्माण का 'निमित्त' कारण भी हो जाता है।

'बिन्दु' का स्वरूप 'रक्त' वर्ण का माना जाता है, जो 'सक्रियता' का प्रतीक है। यही से 'सूक्ष्म' तथा 'स्थूल' का 'उद्भव' होता है। इसी हेतु 'स्थूल' जगत अन्त तक वर्तमान रहता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'सुमित्रानन्दन पन्थ' ने 'न्यग्रोध' बीज के 'औपनिषदिक' रूप का विशद स्वरूप स्थापित कर लिखा है-

मिट्टी का गहरा अन्धकार सोया है उसमें एक बीज।
वह खो न गया मिट्टी न बना कोदो सरसों सा क्षुद्र चीज।।
उसके अन्तस्में छिपा हुआ वट के पादप का महाकार।
संसार एक आश्चर्य एक एक-एक बूँद सागर अपार।।

शक्ति देवी है ब्रह्माण्ड को देवी शक्ति ही अपने में सजोकर रखती है,देवी स्त्री तत्व है जिसमें उत्पादकता निहित रहती है। किन्तु वह शक्ति स्वयं ही सृष्टि करने में समर्थ नहीं होती उसे पुरुष तत्त्व नामक एक शिव की आवश्यकता होती है। उसका स्वरूप विशुद्ध चैतन्य रूप होता है जो स्वतन्त्र सभी पदार्थों से विलग रहता है। इस पृथक् अवस्था में 'देवी' का स्वरूप 'श्याम' वर्ण होता है और 'शिव' का स्वरूप 'स्वेत' वर्ण। 'देवी' से समागम से पूर्व 'शिव' क्षमताहीन रहता है। इसका प्रतीकात्मक अभिप्राय यह है कि 'शिव' रंग रहित रहता है। क्योंकि रंग का सम्मिश्रण 'उत्पाद्य' में रहता है, उत्पादक में नही और 'उत्पद्यता' शक्ति में निहित रहती है। शिव उस अवस्था में पूर्ण शान्त रहता है। 'श्याम' वर्ण शक्ति के साथ समागम होते ही उसमें गतिशीलता प्राप्त होती है,क्योंकि शक्ति में अखिल ब्रह्माण्ड अव्यक्तावस्था में पडा रहता है। शक्ति का स्वरूप घनघोर अन्धकार जैसा है,सृष्टि होने तक वह अन्धकार में छिपी रहती है।उसे हम 'अहिल्या' कह सकते है। यहाँ 'अह' का अभिप्राय दिन और 'ल्या' का अभिप्राय छिपने वाली से है। क्योंकि शक्ति अपना मुख तथा वस्त्र आदि सभी कुछ छिपाकर रखती है। जब अन्धकार का मिलन प्रकाश से होता है तो प्रकाश उसको निगल जाता है। उस अवस्था में दोनों का अन्तर दिखाई नहीं देता है। प्रतीकात्मक स्वरूप में यही ब्रह्मा की 'रात्रि' है। इस समागम के पश्चात् ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि हो जाती है। वहाँ मन आदि चेतन पदार्थ तथा

प्रकृत आदि स्थूल पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। तब वहाँ अव्यक्तावस्था में शिव स्थित रहते है। इस मिलन का वर्णन शब्दों में वद्ध नहीं किया जा सकता।

यजुर्वेद के एक मन्त्र में प्रजापति शक्ति के 'गर्भ' में समाहित होकर विभिन्न प्रकार से उत्पन्न होते हुए बताया गया है।और यह भी निर्देश है कि विद्वान लोग उसके मूल को जानने के लिए गतिशील रहते है। क्योंकि मूल (योनि) में अखिल ब्रह्माण्ड स्थित रहता है।

'प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानोबहुधाव्विजायते।

तस्ययोनिम्परिपश्यान्तिधीरास्तस्म्मिन्हतस्त्थुर्भुवनानिव्विश्वा।। [१]

इसी प्रकार का अभिप्राय अपने स्वरूप के निर्धारण में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया है जैसा कि इसके पहले उल्लेख किया जा चुका है। अनुमानतः सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ शक्ति से 'सत्' 'चित्' तथा 'आनन्द' के रूप में विद्वानों ने माना है। सत् का अभिप्राय 'पुरुष' और 'चित्' का अभिप्राय है 'चेतना' । 'सत्' और 'चित्' के मिलन से आध्यात्मिक 'आनन्द' की उत्पत्ति होती है। वह 'शक्ति' का ही पुत्र है क्योंकि मानव समाज में भी इस सत्य को देखा जा सकता है। स्त्री पुरुष के मिलन से पुत्र के उत्पन्न होने पर 'आनन्द' का अनुभव किया जाता है। इस प्रकार शक्ति ही सभी प्रकार के जीवन का मूल है।

---

[१] शु.य.वे.मा.शा.अ.३१/१९

अन्त में 'शक्ति' तथा 'शिव' दोनों ही अविभाज्य रूप में वर्तमान हो जाते है, वह परमात्मा में मग्न हो जाता है। उसे जीवन-मुक्त कहते है।

महाकवि कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तलारूपी शक्ति की उपमा देते हुए पूजा योग्य पदार्थों की गणना किया है और यह बताने का प्रयास किया है कि इन शक्तिरूपी इन पदार्थो से जिस 'पुत्रानन्द' की प्राप्ति होगी वही इस देश के नाम का 'मूल' बनेगा। इस अभिप्राय की भी अभिव्यक्ति होती है-

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।[१]

'समुपस्थास्यति' 'सम्' पूर्वक 'स्था' धातु का अभिप्राय 'पूजा' अर्थ भी होता है इस पदखण्ड का अर्थ है विधाता इन पूजार्ह द्रव्यों से किस भगवान् की आराधना करेगा। भरत को देखकर 'दुष्यन्त' के मन में जो 'आनन्द' रूप 'चैतन्य' का उदय हुआ तथा उसके वाक्यों से जो ऊर्जा का सञ्चार हुआ वह 'आनन्द' से कथमपि कम नही था यह 'आनन्द' 'ऐन्द्रीय' 'आनन्द' से भिन्न परमानन्द रूप है। क्योंकि उस बालक में अज्ञात रूप से दुष्यन्त ही शक्ति रूप में समाहित है।

[१] अभि.शा.२/१०

'पशु,वीर,और दिव्य आदि भेदों से (साधकों की पात्रता के आधार पर) साधकों को वर्गीकृत भी किया गया है। कुछ साधक प्राणप्रधान एवं देह प्रधान मन वाल होते है, कुछ साधक तनुमनसा' सत्वापति के स्तर के होते है।

कुछ साधक पर वैराग्य के स्तर पर साधना में निरत रहते हैं सभी के लिए एक ही साधना पद्धति, एक ही आचार लागू नहीं किया जा सकता । कुछ तामसिक कुछ राजसिक,और कुछ सात्विक प्रवृत्ति के होते हैं।

कोई 'बहिर्मुख होते है और कोई अन्तर्मुख। इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर 'चर्यापाद' में साधक का भिन्न-भिन्न पद्धतियों की भी रचनाओं की विवेचना की गयी है।

इस प्रकार शाक्त उपपुराणों (महाभागवत पुराण,कालिका पुराण,देवीपुराण) में दस महाविद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है शक्ति-उपासना में (१)-काली, (२)-तारा, (३)-त्रिपुरा या षोडशी, (४)-भुवनेश्वरी, (५)-भैरवी, (६)-छिन्नमस्ता, (७)-धूमावती, (८)-मातङ्गी, (९)-कमला या कमलात्मिका, (१०)-बगलामुखी-इस दस महाविद्याओं का अत्यन्त महत्व है।

वैष्णव -धर्म के दशावतारों की भाँति ही इनमें से प्रत्येक के उपासक पृथक्-पृथक् है। इनकी भी पूजा गोप्य मानी गयी है।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
मातङ्गी सिद्धविद्या च कथिता बगलामुखी।
एता दश महाविद्याः सर्व तन्त्रेषु गोपिताः।।

इनमें से कुछ के नाम भिन्न हैं किन्तु संख्या सर्वत्र दश ही है। इनमें से प्रथम दो''महाविद्या'' पाँच विद्या तथा अन्त की तीन 'सिद्धविद्या'' के नाम से ख्यात हैं। श्रीविद्या षोडशी को मानते है।

ललिता,राजराजेश्वरी,महात्रिपुरसुन्दरी,बालापञ्चदशी आदि उनके अनेक नाम हैं। इन्हें आत्म --शक्ति माना जाता है । इनकी उपासना से भोग-मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। अन्य की उपासना से दोनों में से एक भोग या मुक्ति ही मिल सकती है। इनके स्थूल,सूक्ष्म,पर तथा तुरीय चार रूप हैं।

अतः भगवती महात्रिपुरसुन्दरी (श्रीविद्या) की उपासना पद्धति का विस्तृत वर्णन यहाँ प्रतिपादित किया जाता है जिसे हम यहाँ पर यन्त्रों के माध्यम से सम्पूर्ण सपर्या पद्धति को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

उप पुराणों में शाक्त दृष्टि पर विचार करने के पूर्व पुराण के विषय में चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि वेद मानव मात्र का कर्तव्याकर्तव्य के निर्धारण करने वाला संविधान है,जिसको जानने के लिए चौदह विद्याओं का निर्देश महर्षि याज्ञवल्क्य ने निम्नांकित प्रकार से किया है। जिसमें उन्होंने प्रार्थम्येन पुराण का ही उल्लेख किया है। उनका कथन है कि धर्म अर्थात कर्तव्याकर्तव्य के विवेचन में पुराण,न्याय,मीमांसा,धर्मशास्त्र,वेदाङ्ग,कल्प,शिक्षा,ज्योतिष, निरुक्त,छन्द,व्याकरण,तथा चारों वेदों का समान अधिकार बताया है।

गुरुपादुका

सूर्य

चन्द्र

गुरु
शुक्र

अङ्गारक
बुध

शनि

नव ग्रहाः
Budha
Śukra
Candra
Guru
Ketu
Śani
Rāhu

15. प्राणप्रतिष्ठा

महा श्यामला

Dīpa
Viṣnu
Śiva
dīpa
dīpa
Sūrya
Ganapati
dīpa
Śankha
Kalaśa
Visesarg
Pūja implements
Āsana
Pūja articles

Sōma Maṇḍala
(honey)
1
am
Amṛtāyai
2
ām
Mānadāyai
3
im
Pūṣāyai
4
īm
Tuṣṭyai
5
um
Puṣṭyai
6
ūm
Ratyai
7
ṛm
Dhṛtyai
8
ṝm
Śaśinyai
9
ḷm
candrikāyai
10
ḹm
Kāntyai
11
ēm
Jyōtsnāyai
12
aim
Śriyai
13
Ōm
Prītyai
14
aum
Angadāyai
15
am
Pūrṇāyai
16
aḥ
Purṇāmṛtāyai

tam
kham kam
kṣam
lam
aḥ
tham dam
saḥ
īm
ham
sam
ham
am ām

6
cam
Lakṣmyai
5
ṅam
Kāntyai
7
cham
Dyutyai
8
jam
Sthirāyai
4
gham
Medhāy
Brahma Maṇḍala
(yogurt)
9
jham
sthityai
3
gam
Smṛtyai
10
ṅam
Siddhyai
2
kham
Ṛddhyai
1
kam
Sṛṣṭyai

Viṣṇu Maṇḍala
(milk)
1
ṭam
Jarāyai
2
ṭham
Pālinyai
3
ḍam
Śāntyai
4
ḍham
Īśvaryai
5
ṇam
Ratyai
6
tam
Kāmikāyai
7
tham
Varadāyai
8
dam
9
dham
Prītyai
10
nam
Dīrgāyai
Rudra Maṇḍala
(grape juice)
1
pam
Tīkṣṇāyai
2
pham
Raudryai
3
bam
Bhayāyai
4
bham
Nidrāyai
5
mam
Tandryai
6
yam
kṣudhāyai
7
ram
Krodhinyai
8
lam
Kriyāyai
9
vam
Udgāryai
10
śam
Mṛtyave

Īśvara Maṇḍala
(yellow flowers, white flowers,
red flowers, sāmānyārghya)
1
ṣam
Pītāyai
2
sam
Śvetāyai
3
ham
Aruṇāyai
4
kṣam
Asitāyai
Sadāśiva Maṇḍala
(milk)
1. am
Nivṛtyai
2. ām
Pratiṣṭhāyai
3. im
Vidyāyai
4. īm
Śāntyai
5. um
Indhikāyai
6. ūm
Dīpikāyai
7. ṛm
Recikāyai
8. ṝm
Mocikāyai
9. ḷm
Parāyai
10. ḹm
Sūkṣmāyai
11. em
Sūkṣmāmṛtāyai
12. aim
Jñānāyai
13. om
Jñānāmṛtāyai
14. aum
Āpyāyinyai
15. aṃ
Vyāpinyai
16. aḥ
Vyomarūpāyai

Kameśvarī nityā

Kāmeśvarī nityā
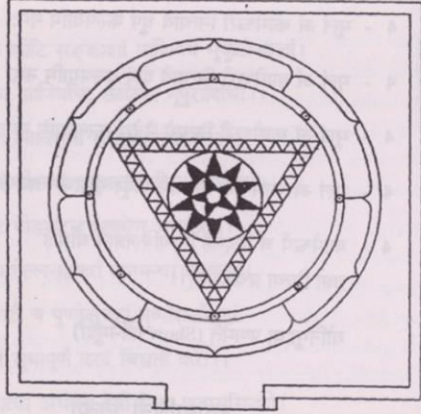
Bhagamalini nitya
Bhagamālīnī nityā

Nityaklinna nitya
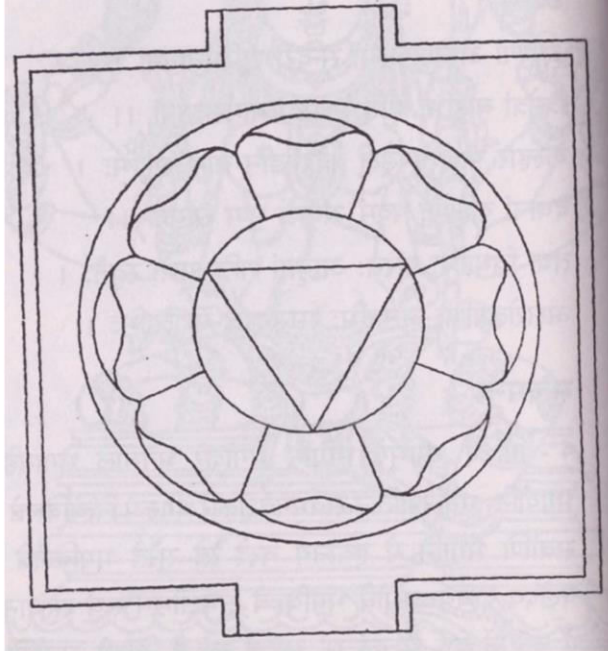
Nityaklinnā nityā

Nityaklinnā nityā

Bherunḍā nityā
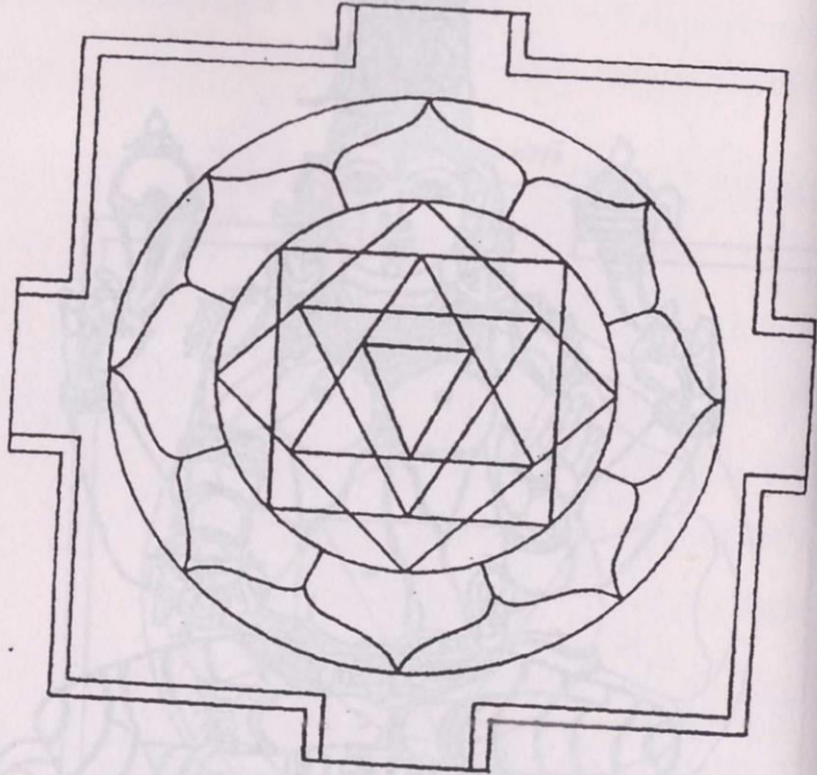
Bhēruṇḍā nityā
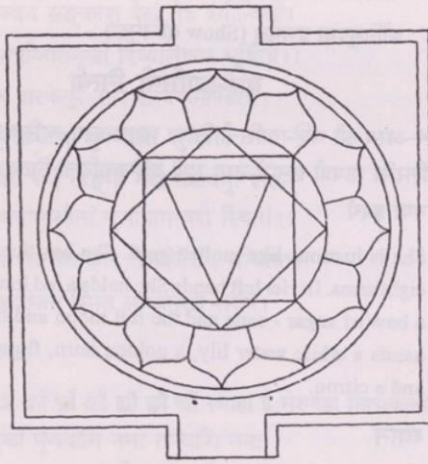
Vahnivāsinī nityā

Mahāvajreśvarī nityā

Śivadutī nityā

Tvaritā nityā

Tvaritā nityā

Kulasundarī nityā
Kulasundarī nityā
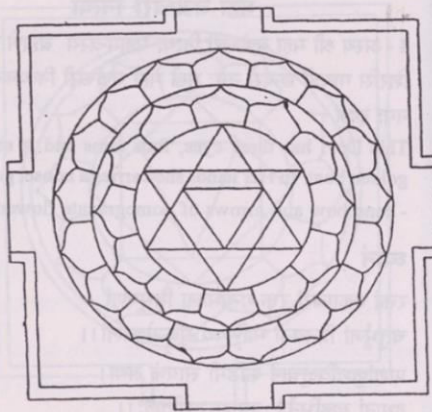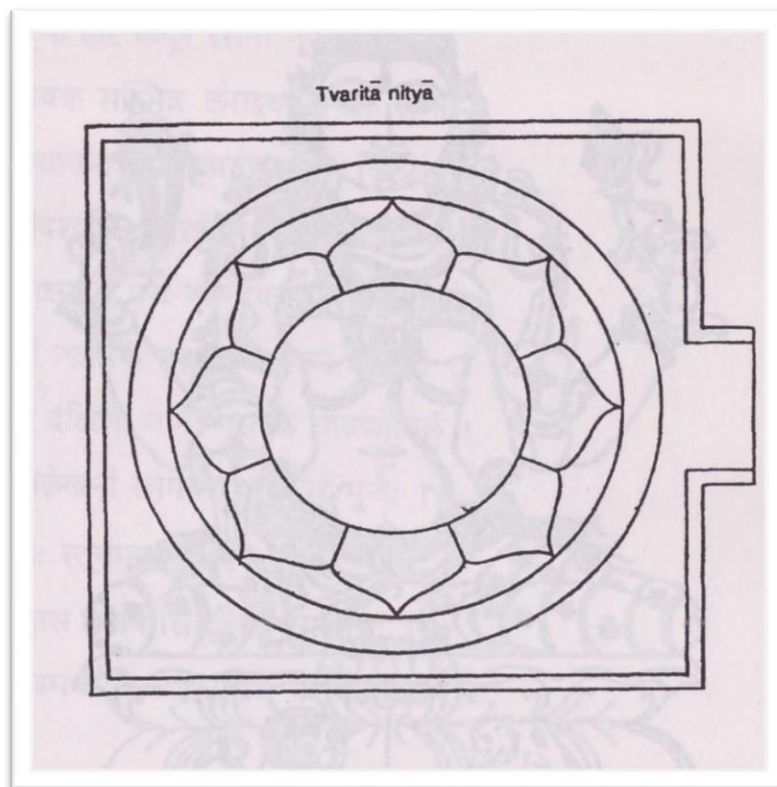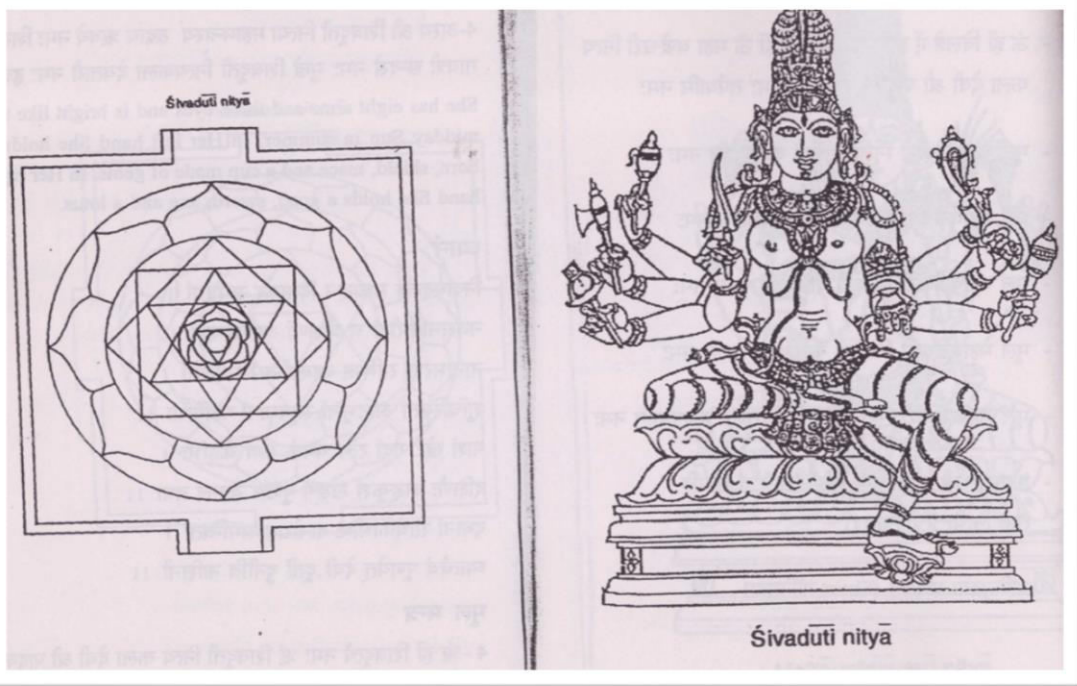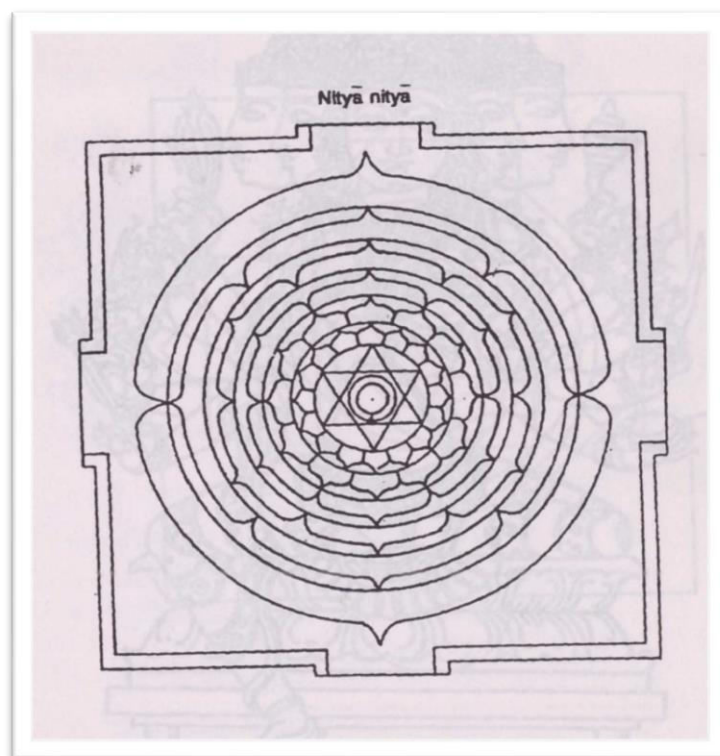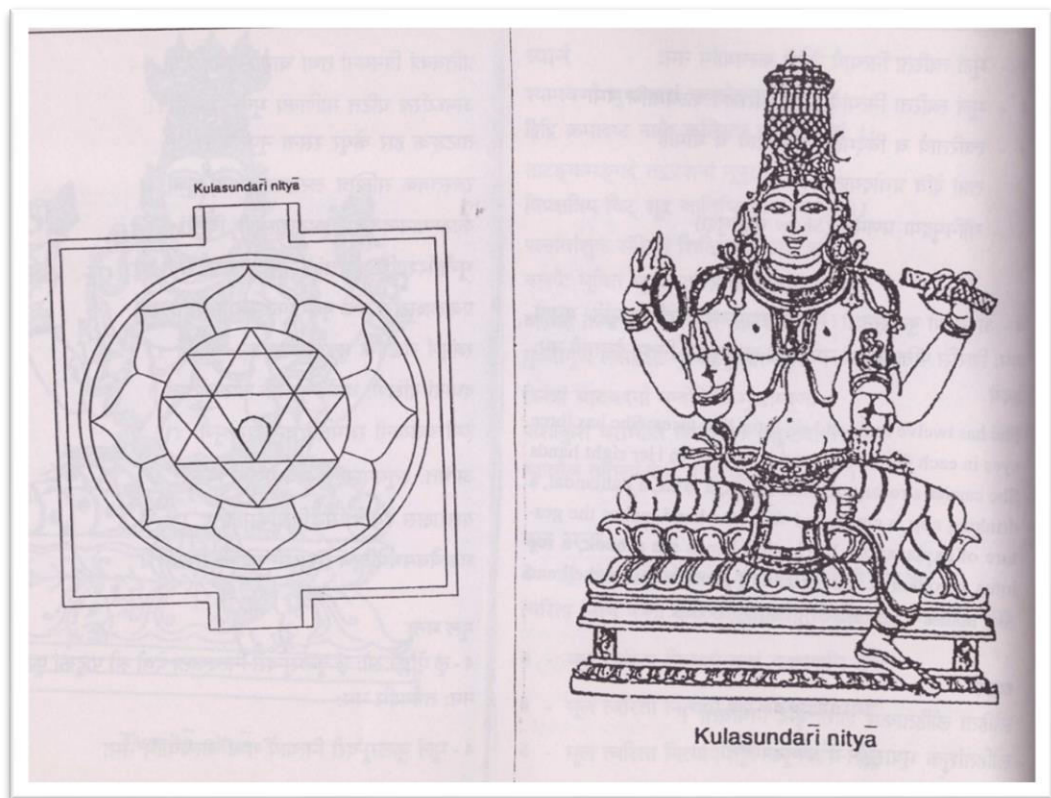
Nityā nityā

Nityā nityā

Nīlapatākā nityā

Nilapatākā nityā

Vijayā nityā
Vijayā nityā
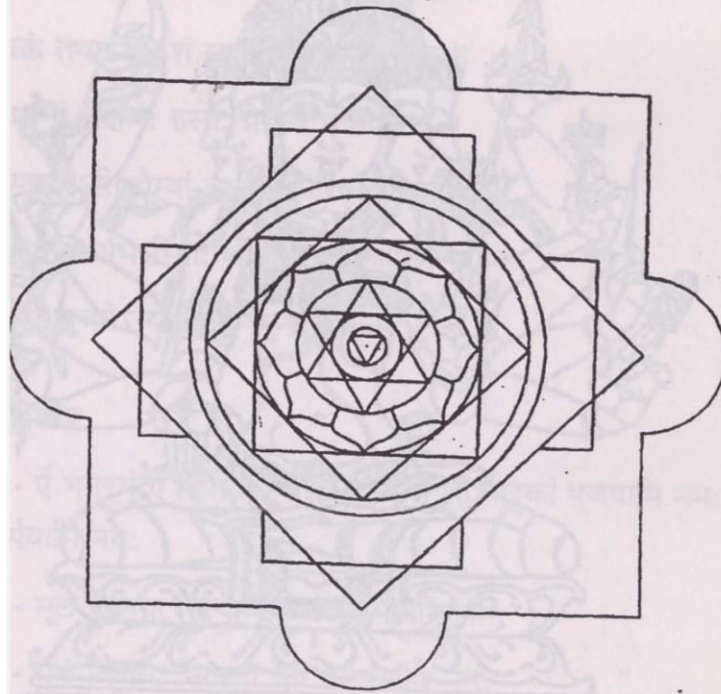
Sarvamaṅgaḷā nityā
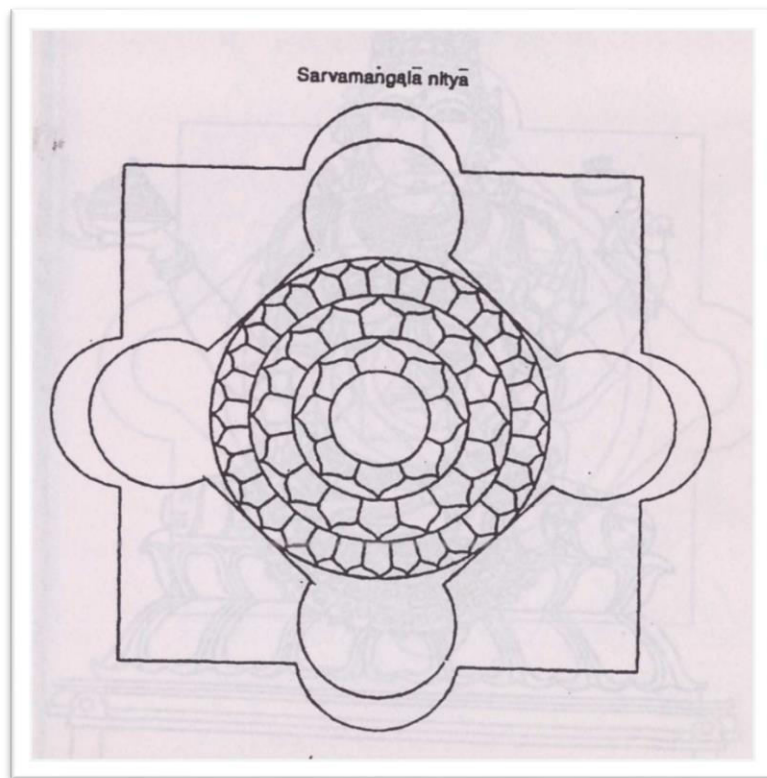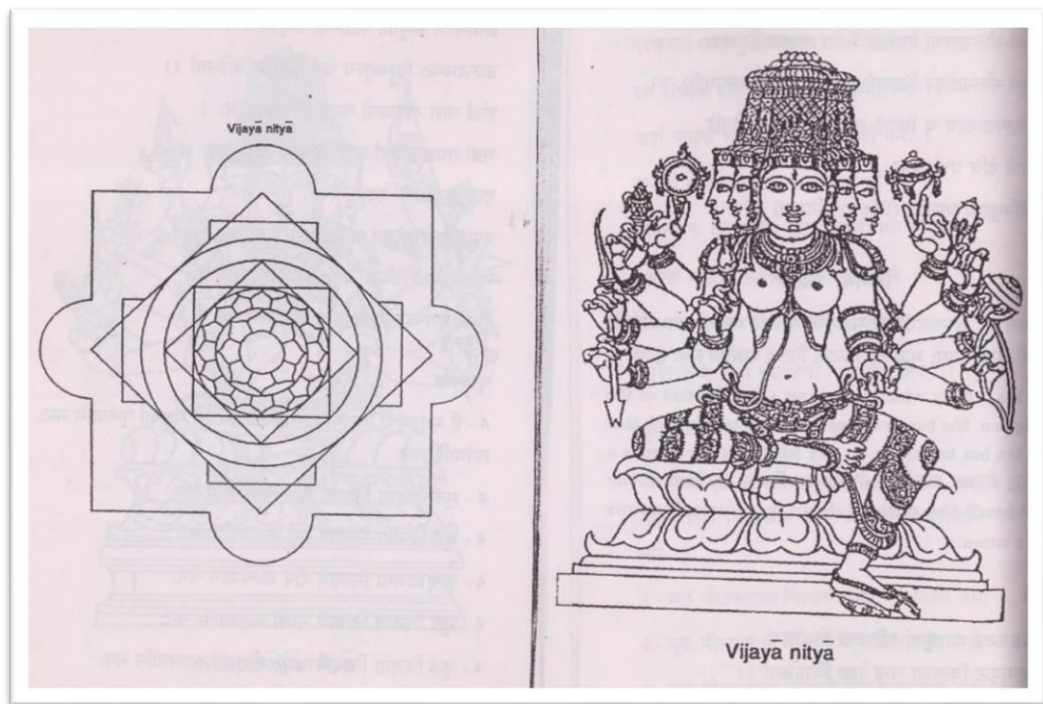
Sarvamaṅgaḷā nityā

Jvālāmālinī nityā

Jvālāmāliṇī nityā

गुरु मण्डल

त्रैलोक्य मोहन चक्रम्

सर्वाशा परिपूरक चक्रं

Citta
9
Gandha
8
Rasa
7
Rūpa
6
Sparśa
5
Śabda
4
Ahaṅkāra
3
Buddhya
2
Kāma
1
Śarīra
16
Amṛta
15
Ātma
14
13
Nāma
12
Smritya
11
Dhairya
10

सर्व संक्षोभण चक्रं
1
2
3
4
5
6
7
8

पञ्चमावरणम्।
सर्वार्थ साधक चक्रं

Sarva Duḥkha Vimōcani
Sarva Kāmapradā
Sarva Mṛtyu Praśamani
Sarva Maṅgalakāriṇi
Sarva Vighna Nivāriṇi
Sarvāṅga Sundari
Sarva Priyaṁkari
Sarva Saubhāgya Dāyini
Sarva Sampatpradā
Sarva Siddhipradā
श्री कुलोत्तीर्ण योगिनी देवि
ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः
आवरण 5

षष्ठावरणम्
सर्वरक्षाकर चक्रं
7
6
5
8
4
9
3
10
2
1

Sarvādhārasvarūpe
6
Sarva
Pāpa Harē
7
Sarva
Vyādhivināśini
5
Sarvānanda
Mayi
8
Sarva
Jñāna Mayi
4
9
Sarva
Rakṣā Svarūpini
3
Sarvaiśvarya
Pradāyini
Sarvēpsita
Phala Pradē
10
2
Sarva
Śakte
1
Sarva
Jñe
श्री निगर्भ योगिनी देवि
ह्रीं क्लीं ब्लें
आवरण 6

सर्वरोगहर चक्रं
5
6
4
7
3
8
2
1

Aruṇē
5
Jayini
Vimalē
6
4
Sarvēśvari
Mōdini
7
3
8
2
Kaulini
Kāmēśvari
1
Vaśini

अष्टमावरणम्
सर्वसिद्धिप्रद चक्रं

श्री अतिरहस्य योगिनी देवि
ह्सैं ह्स्क्लरीं ह्ससौः
आवरण 8

नवमावरणम्
सर्वानन्दमय चक्रं

महा त्रिपुरसुन्दरि
कएईलहीं हसकहलहीं सकलहीं

Ha sa ka ha la Hrīṁ
Sa ka la Hrīṁ
Ka e ī la Hrīṁ

**

इनमें से कुछ के नाम भिन्न हैं किन्तु संख्या सर्वत्र दश ही है। इनमें से प्रथम दो''महाविद्या'' पाँच विद्या तथा अन्त की तीन 'सिद्धविद्या'' के नाम से ख्यात हैं। श्रीविद्या षोडशी को मानते है।

ललिता,राजराजेश्वरी,महात्रिपुरसुन्दरी,बालापञ्चदशी आदि उनके अनेक नाम हैं। इन्हें आत्म --शक्ति माना जाता है । इनकी उपासना से भोग-मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। अन्य की उपासना से दोनों में से एक भोग या मुक्ति ही मिल सकती है। इनके स्थूल,सूक्ष्म,पर तथा तुरीय चार रूप हैं।

अतः भगवती महात्रिपुरसुन्दरी (श्रीविद्या) की उपासना पद्धति का विस्तृत वर्णन यहाँ प्रतिपादित किया जाता है जिसे हम यहाँ पर यन्त्रों के माध्यम से सम्पूर्ण सपर्या पद्धति को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

उप पुराणों में शाक्त दृष्टि पर विचार करने के पूर्व पुराण के विषय में चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है। क्योंकि वेद मानव मात्र का कर्तव्याकर्तव्य के निर्धारण करने वाला संविधान है,जिसको जानने के लिए चौदह विद्याओं का निर्देश महर्षि याज्ञवल्क्य ने निम्नांकित प्रकार से किया है। जिसमें उन्होंने प्रार्थम्येन पुराण का ही उल्लेख किया है। उनका कथन है कि धर्म अर्थात कर्तव्याकर्तव्य के विवेचन में पुराण,न्याय,मीमांसा,धर्मशास्त्र,वेदाङ्ग,कल्प,शिक्षा,ज्योतिष, निरुक्त,छन्द,व्याकरण,तथा चारों वेदों का समान अधिकार बताया है।

पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमीश्रिताः।

वेदास्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।।[१]

इतना ही नही पद्मपुराण तो वेद के विस्तृत ज्ञान के लिए इतिहास पुराण का ज्ञान अपरिहार्य बताया है। अर्थात् इतिहास पुराण के द्वारा ही वेद सम्बन्धी ज्ञान की परिपुष्टि की जानी चाहिए। अन्यथा वेद को इस बात का भय होता है कि अल्पज्ञ हमारा दुरुपयोग करेगें।[२]

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुराण है क्या है,इसकी विषय सामग्री क्या है।

अतः विद्वानों ने पुराण शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की है।[३]

महर्षि यास्क ने भी इस व्युत्पत्तिका समर्थन किया है। यास्क ने 'पुरा नवं भवति' अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया है।[४]वायु पुराण के अनुसार पुरा का अभिप्राय जो प्राचीन काल में जीवित था।

यस्मात् पुराह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।

निरुक्तं अस्य यो वेद सर्व पापैः प्रमुच्यते।।[५]

पद्म पुराण में इसकी व्युत्पत्ति कुछ भिन्न है। पुरा परम्परा वष्टि कामयते' अर्थात जो पुरानी परम्परा को जीवित रखने की कामना करता है।[६]

---

[१] या.स्मृ.उपोद्धात श्लो.३

[२] पुराण परिशीलन पृ.१२

[३]पा.सू.४/३/२३

[४] निरुक्त ३/१९

[५] वायु पुराण १/२०३

[६] पद्म पुराण ५/२/५३

शास्त्रों की ऐसी प्रसिद्धि है कि पुराण की रचना ब्रह्मा ने सबसे पहले किया था। उसके बाद ही उनके चारों मुखों से चारों वेदों का प्रणयन हुआ।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।[1]

भगवान मनु का कथन है कि सभी के नाम तथा कर्म पृथक- पृथक वेद शब्द से ही आदि काल में निर्माण किया गया है।

सर्वेषामतु नामानि कर्माणि च पृथक् -पृथक्।

वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक संस्थाश्च निर्ममे।।[2]

वाक्यपदीय कार श्री भतृहरि ने भी शब्द तत्व से ही जगत की सृष्टि के निर्माण की योजना का समर्थन किया है। वही शब्द तत्त्व अर्थ भाव से सर्वत्र प्रसारित होता है। अनादि निधनं ब्रह्म जो व्यक्ति किसी वस्तु को बनाना चाहता है स्वभाविक रूप से उसको बनाने के पूर्व वस्तु का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है,जैसे लकडी की कुर्सी बनाने वाला कुर्सी बनाने के पूर्व कुर्सी की पूरी लम्बाई चौडाई मोटाई आदि पूर्व रेखा अपने मन में कल्पित कर लेता है। यदि ऐसा नही तो यह उक्ति चरितार्थ होने लगेगी कि विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्। इसीलिए ब्रह्मा ने सृष्टि के पूर्व पुराणों की रचना की।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में एक ऐसे समाज का उदय हुआ जिसमें पुराणों को लोगों ने गप्प माना और उन्हें अप्रमाणिक माना। इस कार्य में आर्य समाज

---

[1]वायु पु.१/६१ तथा मत्स्य पुराण ५३/३

[2] मनु स्मृति अ./२१

के विद्वानों ने विशेष भूमिका निभाई । उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण को बोपदेव नामक किसी व्यक्ति द्वारा रचित बताया तथा इसका प्रचार प्रसार किया।

हद तो यह है कि निम्नांकित श्लोक में उन्होने ह्रास की एक परम्परा बना डाली।

शास्त्रेषु नष्टा कवयो भवन्ति काव्येषु नष्टा च पुराण पाठाः
तत्राऽपि नष्टा कृषिमाश्रयन्ति नष्टा कृषेः भागवता भवन्ति।।[१]

किन्तु वे लोग भूल गये की पुराण एक विद्या है और यह सनातन सृष्टि विद्या है । जिसे आज का वैज्ञानिक मानने लगा है।

किन्तु पूर्व में भारतवर्ष के एक सपूत जगदीश चन्द्र बोस ने इसी विद्या के आधार पर यह सिद्ध कर दिखाया है कि पौराणिक विज्ञान ने इसको बहुत पहले ही यह कर दिखाया है कि वृक्षों में भी चैतन्य सत्ता और जीवन के सूत्र विद्यमान है। पौराणिक विज्ञान यह मानता है कि सृष्टि का आदि प्रवर्तक एक ही तत्व है लोगों ने इसकी भी परिहास उडया किन्तु आधुनिक वैज्ञानिको ने यह खोज निकाला है कि एलक्ट्रोन सृष्टि के मूल में दो तत्व है किन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि इन दोनों तत्वों का मूल भी एक ही है। इसप्रकार आलोचकों के पास कोई प्रमाणिक तर्क नही रहा।[२]

पुराणों की प्राचीनता

---

[१] पुराण परिशीलन पृ.११

[२]पुराण परिशीलन पृ.७

नारदीय पुराण में यह उल्लेख है कि पुराणों का ज्ञान हो जाने से चराचर से सम्बन्धित सभी बातों का ज्ञान हो जाता है।

श‍ृणुवत्स प्रवक्षामि पुराणानां समुच्चयम्।

यस्मिन्ज्ञाते भवेद्ज्ञातं वाङ्गमयं सचराचरम्।।[1]

ऋग्वेद संहिता में भी पुराण शब्दका उल्लेख हुआ है तथा अथर्ववेद में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है ।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सः,

उच्छिष्टाच्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रुताः।[2]

अधोलिखित उद्धरणों से यह पूर्णतया प्रमाणित होता है कि पुराण कोई ग्रन्थ न होकर सृष्टि विद्या का उपकरण था। सृष्टिसे लेकर प्रलय तक ब्रह्माण्ड की जितनी भी क्रियाएँ है इस सबका समावेशअधोलिखित उद्धरणों में समाहित है। ये सभी ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन है। और आज भी उनके काल का सम्यक निर्धारण नही हो सका। महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि इतिहास,पुराण,नाराशंसी आदि विद्याएँ पितरों को तृप्त करने के लिए उन्हें समर्पित की जाती थी। और इन विद्याओं के पाठ से उन्हें अत्यन्त तृप्ति मिलती है।

इतिहासस्य च सैव पुराणस्य च गाथानाञ्च,

नाराशंसीयाञ्च प्रिय धाम भवति य एवं वेद।[3]

वाकोवाक्यं पुराणञ्च नाराशंसीश्चगाथीकाः।

---

[1] नारदीय पु.१/९२/

[2] अथर्ववेद ११/७/९-१०

[3] अथर्ववेद १५/१/६

इतिहासाश्चां तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम्।।[1]

वेदाथर्व पुराणानि सेतिहासानि शक्तितः।

जपयज्ञ प्रसिद्ध्यर्थं विद्यायाध्यात्मकिं जपेत्।।[2]

इतने प्राचीन उद्धरणों के प्राप्त होने पर भी भारतीय इतिहास के मध्यकाल में कुछ विद्वानों ने पुराण पर आक्षेप किया है। जो समीचीन प्रतीत नही होता। राजकुलम नामकी एक पुस्तक में यह उल्लखित है कि सम्पूर्ण भुवन का जिस प्रकार से उल्लेख किया गया है, उसका आधार पुराणों में उद्धृत भुवन कोष ही है।

पुराणमिव जथाविभागावस्थापित सकल भुवन कोषम्।।[3]

इतना ही नही पुराण प्रवचन की एक अनवच्छिन्न परम्परा है जो अनादि काल से प्रारम्भ हुई जिसके प्रवर्तक वेदव्यास जी थे। और उनके पश्चात पराशर, सूत आदि विद्वानों ने इसके प्रवचन का क्रम जीवित रखा। और आज भी शिव पुराण,भागवत पुराण,देवी पुराण,आदि पुराणों की प्रवचन परम्परा वायु पुराण में उल्लेख है कि सृष्टि काल में पुराणों से जो बहिर्गत होता है, उसी को संहार काल में पुराण पुनः निगल जाते है।

अतश्च संक्षेपमिमंश्रुणुध्वं नारायणं सर्वमिदं पुराणम्।

स सर्ग काले च करोति सर्गः संहार काले च तदन्ति भूयः।।[4]

---

[1] या.स्मृ.१/४५

[2] या.स्मृ.१/१०१

[3] राजकुलं उद्धृत पुराण विमर्श बलदेव उ.पृ.३४

[4] पुराणविमर्श बल.पृ.३०

विष्णुपुराण की टीका में विश्वरूप का कथन है कि पुराणों में भगवान सूर्य के अनेक वीथियों का वर्णन है।।[1]

आज भी भागवत तथा विष्णु पुराण में भुवन कोष का भी वर्णन मिलता है।[2]

मत्स्य पुराण की यह उक्ति है कि-

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्।

नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटि प्रविष्टरम्।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्य वेदास्तस्य विनिसृताः।।[3]

शत कोटि प्रविष्टरम् ' शब्दावली इस बात का संकेत करती है कि पुराण किसी गम्भीर विद्या का स्त्रोत है। जिसके आधार पर सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई। यह पुराणों में ही मिलता है कि वैवस्वत मन्वन्तर के इस २८ वे कलयुग तक २८ व्यास हो चुके है। जो प्रत्येक कलियुग पुराण विद्या का संक्षेपकर ग्रन्थ निर्माण करते रहते है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि व्यास या वेदव्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है अपितु यह एक उपाधि है अथवा अधिकार का नाम है। जो ऋषि मुनि वेद संहिताओं का विभाजन या पुराणों का संक्षेप करता है तो उसे व्यास या वेदव्यास कहते है।

पुराण शब्द सामान्य भाषा में भी प्राचीनता का द्योतक है,कुछ आधुनिक विद्वान इसे कल्पित कथाएँ मानते थे। और यह कल्पना करते थे कि यह किसी गम्भीर

[1] विश्वरूप की बाल क्रीडा टीका ३/१७५
[2] भा.म.पु.स्क.५
[3] म.पु.अ.३/३/४

विद्या का द्योतक नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है पुराण शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भी कुछ विचार किया जाय।

पाणिनि ने अपने सूत्र ४/३/२३ संख्या द्वारा पुरा भवम् अर्थात् प्राचीन काल में होने वाला। इस अर्थ में प्रयोग किया गया है। निरुक्तकार ने भी पुराण शब्द की व्युत्पत्ति पुरा नवं भवति अर्थात् जो प्राचीन काल में भी नया होता है।

पद्मपुराण में पुरा परम्परावष्टि कामयते अर्थात् जो प्राचीन काल की परम्परा का कामना करता है।

ब्रह्माण्ड पुराण इससे भिन्न एक तीसरी व्युत्पत्ति देता है। जिसका अभिप्राय है पुरा एतत् अभूत।

इतिहास पुराण शब्द का साथ-साथ प्रयोग होने के कारण कभी-कभी यह भ्रान्त धारणा बनती जा रही थी , इसी कारण कतिपय पाश्चात्य विद्वान यह मानने को तैयार नहीं थे कि पुराण और इतिहास ये दोनों विद्याएँ भिन्न-भिन्न है। यास्क ने भी उल्लेख किया है कि ऋग्वेद में ही त्रिविध ब्रह्म के अन्तर्गत इतिहास मिश्र,मन्त्र पाये जाते है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार से ब्रह्मविद्या सीखे जाने पर नारद द्वारा पूछे जाने पर आपने क्या-क्या अध्ययन किया है। इतिहास की व्युत्पत्ति में विद्वानों ने (इति इत्थम्+निश्चयेन आ स था) अर्थात् जो प्राचीनकाल में होनें वाली घटना को इतिहास कह जाता था।

इति ह एवासीत इति य उच्यते स इतिहासः।

महाभारत को इतिहास ही कहते है, इतना ही नही महाभारत स्वयं को इतिहास कहता है।

जयोनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।[1]

राजशेखर के अनुसार इतिहास दो प्रकार का होता है, प्रथम परिक्रिया अर्थात् एक नायक वाली कथा। जैसे रामायण।

इतिहासोत्तमादस्माज्जायते कवि बुद्धयः।

दूसरा पुराकल्प अर्थात् बहुनायक की कथा जैसे महाभारत। परिक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा,स्यादेक नायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका। महाभारत स्वयं को इतिहास माना है और स्वयं को पुराण की संज्ञा भी दिया है।[2] वायु पुराण में भी पुरातन इतिहास की चर्चा है । इन विभिन्न व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि पुराण तथा इतिहास संयुक्त रूप में व्यवहृत होते हुए भी अपनी अलग पहचान रखते थे।

शङ्कराचार्य ने छान्दोग्योपनिषद् की टीका में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि इतिहास तथा पुराण दोनों ही वेदों में उपलब्ध है। उर्वशी तथा पुरुरवा के संवाद को शतपथ ब्राह्मण ने इतिहास माना है।

उर्वशी हाप्सराःपुरुरवास्मै चक्रमे। तथा सृष्टि के उत्पत्ति के कथानक को पुराण माना है।

शङ्कराचार्य की दृष्टि में दोनों पृथक-पृथक है प्राचीन आख्यान का सूचक भाग इतिहास है।।

---

[1] म.उ.प.१३६/१८

[2] पुराण विमर्श पेज ६

द्वैपायनो यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।

सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्।

तथा सृष्टि प्रक्रिया बताने वाला पुराण है।

सृष्टि प्रतिपादिकं ब्राह्मेतिहासः।

शतपथ ब्राह्मण की टीका में सायणचार्य ने इसके विपरीत अर्थ किया है। 'आपो हवा इदं अग्रे सलीलमेवान्। इस अंश को इतिहास कहा है और पुरुरवा उर्वशी संवाद को आख्यान माना है।

पुरातनपुरुषवृत्तान्तप्रतिपादकानि पुराणम्।[१]

इदं यो ब्राह्मणों विद्वानितिहासं पुराणम्।

शृणुयाद् श्रावयेद्वापि तथाऽध्यापयेऽपि च।

धंन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदेश्च सम्मतम्।

कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिनाम्।[२]

इन विभिन्न शब्दों के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि पुराण, इतिहास, नाराशंसी, गाथा तथा वेद एक ही श्रोत से उद्भूत हुए है। विद्वानों का मत है कि ये सभी विद्याएँ उच्छिष्ट से प्रादुर्भूत हुई है। ऋचः सामानि छन्दांसि।[३]

विद्वानों ने उच्छिष्ट को ब्रह्म माना है। उच्छिष्ट शब्द का अभिप्राय यहाँ यह प्रतीत होता है कि सभी ब्राह्मणों की रचना के पश्चात जो शेष रह जाय (उत् छिष्ट इस

---

[१] श.ब्रा.११/५/६/८

[२] वा.पु.१०३/४८-५१

[३] पुराण वि.पेज ८

शब्द को स्पष्टरूप से भागवत निहित गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्र से जोडा जा सकता है। जहा निशेधशेषोजयतादशेषः'।[1] अर्थात् सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न हो जाने पर भी जिसका अस्तीत्व बना रहे।

मन्त्र का अर्थ करते हुए विद्वानों में सर्वत्र मतभेद है। कुछ लोग इसका अर्थ यज्ञ का अवशेष मानते है।

सायणाचार्य की दृष्टि में (उत् उर्ध्वम्) अर्थात् सर्वेषां भूतभौतिकानां अवसाने, उच्छिष्ट उर्वरीतः परमात्मा [2].

व्रात्यस्तोम के अन्तर्गत इन मन्त्रों की उपलब्धि होती है। व्रात्यपद से रुद्रावतार परमात्मा का बोध होता है। पैप्पलाद संहिता में व्रात्य के विषय में यह कहा गया है कि ये सबसे प्रथम दृष्ट था।

इससे यह निर्देश मिलता है कि व्रात्य शब्द भी परमात्मा का ही बोधक है। रुद्राष्टाध्यायी में (नमो व्रात्याय) कहकर व्रात्य को रुद्र का स्वरूप माना गया है।[3]

इतिहास पुराण के साथ व्रात्यस्तोम में पाचँ वेदों की कल्पना की गयी है और यह बताया गया है कि जो व्यक्ति इनको अच्छी तरह जानता है वहीं इनका प्रिय धाम होता है। यहाँ इतिहास,गाथा,तथा नाराशंसी के साथ प्राण शब्द का प्रयोग समानार्थक प्रतीत होता है।

---

[1] गजेन्द्र मोक्ष ८/३/२४

[2] पुराण विमर्श पृ.८,९ बलदेव उ

[3] शु.य.अ.१६/३९

उपाध्याय जी के दृष्टि में ये शब्द लौकिक साहित्य की सत्ता की ओर इन्गित करता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य की दो धाराएँ प्रचलित हुई। जिनमें एक धारा विशुद्ध धार्मिक है जो किसी देवता विशिष्ट की स्तुति तथा प्रार्थना से सम्बन्ध रखती है।

दूसरी धारा पूर्णतया लौकिक है जिसका प्रयोग तथा अभ्यास लोक मे ख्याति प्राप्त करने के लिए किया जाता है।यह परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में ही दान स्तुति तथा नाराशंसी दोनों ही उपलब्ध होते है जिनमें ऋषि को प्रभूत दान देने वाले किसी आश्रय दाता शासक की ओर संकेत करता है।

पुराण का सम्बन्ध इसी द्वितीय धारा से मानना अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। अथर्ववेद में यह उल्लेख है कि इस भूमि के पूर्व जो भूमि थी उस भूमि के विषय में सत्य ज्ञानी पुरुषों की ही बोध है। जो व्यक्ति निश्चय ही इस भूमि का ज्ञाता होता है उसी को पुराणवित्त मानना चाहिए। [१]यतोऽसीत् भूमि...।[२] इन आख्यानों से यह स्पष्ट होता है कि चारों वेदों के समान ही पुराण का भी महत्व है। क्योंकि वेदों में इतिहास पुराण का उल्लेख साथ-साथ हुआ है।[३] चतुर्वेदी जी ने पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम् ।

---

[१] पु.वि.बल.पृ.१०

[२] पु.परि.पृ.२

[३] बृ.र.उ.अ.३/१०,

के आधार पर यह व्याख्यायित किया किया है कि सृष्टिनिर्माण के पूर्व सृष्टि कर्ता को सृष्टि का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है उनके इस उक्ति की पुष्टि ऋग्वेद के मन्त्र धातापूर्वमकल्पयत।

अभिप्राय यह है कि पुराण सृष्टि विज्ञान का आदि श्रोत है क्योंकि आगमशास्त्र में यह निरूपित है कि शब्द प्रपञ्च तथा अर्थ प्रपञ्च दोनों सम्मिलित थे।

श्रुतियों में भी मिलता है कि भूरिति व्याहरत भुवमक्षिजात।[१] अर्थात् परमात्मा ने भू शब्द का उच्चारण किया तथा भूमि का निर्माण किया । इसका अभिप्राय यह है कि शब्द और अर्थ जो एक में थे उनकों विभाषित कर दिया । दूसरा अर्थ यह है कि शब्द और अर्थ दोनों से युक्त ज्ञान उनके पहले ही था। इस अभिप्राय को मनु ने इस प्रकार कहा है-

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् -पृथक्।
वेद शब्देभ्यएवादौ पृथक संस्थाश्च निर्ममे।।[२]

यही बात गीता में भी कुछ इस प्रकार कही गयी है।

सह यज्ञा प्रजासृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक्।[३]

आगमशास्त्र एक विहङ्गम दृष्टि

---

[१] पु.प.पृ.६
[२] मनु.अ.१/२१
[३] गीता अ.३/१०

'आगम' शब्द शास्त्रों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसका सामान्य अर्थ 'शास्त्र' भी होता है। मत्स्य पुराण ने इसका अर्थ 'शिष्ट ' माना है और इनको मन्वान्तर के ऋषियों के अन्दर समावेश किया है। इन्हीं को 'आप्त' भी माना जाता है। मन्वन्तर के चक्र में इन पुरुषों का ज्ञान अव्याहत तथा अप्रतिहत होता है। इसी हेतु ये पूर्वयुग के अनुसार युगानुकूल कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश करते हैं। वायुपुराण की उक्ति है कि इनके ज्ञान तथा शिक्षा को हेतुशास्त्र का अवयव मानकर निराकरण नहीं करना चाहिए क्योंकि ये मौलिक ज्ञान आज्ञा सिद्ध हैं।

भारतीय दर्शन की भाषा में इसे शब्द अथवा आप्त प्रमाण माना गया है। शब्द प्रमाण के दो पक्ष है-पहला अपौरुषेय वेद जो ऋषियों द्वारा साक्षात् दृष्ट हैं,जो स्वतः प्रमाण है। दूसरा पौरुषेय ज्ञान जो पुरुषों द्वारा साक्षात् अनुभूत हैं।

अनुभूत का अभिप्राय यह है कि सभी ज्ञानों का प्रत्यक्ष न तो शब्द से होता है न हि उसका सम्प्रेषण शब्द के माध्यम से होता है-यथा दो पुष्पों के गन्ध का अन्तर अथवा दो मिष्ठान्नों के स्वाद के भेद । इसका सम्प्रेषण अनुभव कराकर की किया जा सकता है जिसे भर्तृहरि ने स्वयं 'स्वानुभूत्यैक मानाय' कहकर प्रमाणित किया है।

दोनों ही प्रकार के ज्ञान (अपौरुषेय तथा पौरुषेय) सृष्टि के आदि में ऋषियों के माध्यम से प्रसूत होकर श्रुतादि अनवच्छिन्न परम्पराओं द्वारा प्रसारित, पल्लवित तथा पुष्पित होते हैं।

आगम परम्परा के आदि श्रोत के रूप में देवाधिदेव महादेव को माना जाता है जिन्हें वेदों ने प्राणामाञ्जलि अर्पित की है। जगज्जननी पार्वती के प्रश्नों के समाधान में भगवान् शिव द्वारा दिया गया उपदेश है।

'आगतं शिव वक्त्रेभ्यः गतं च गिरिजा मुखे'

इस प्रकार आगत का व्युत्पत्तिलभ्य है, आसन्तात् अर्थं गमयति' समन्तात् का अभिप्राय सभी उपक्रमों,उपचारों तथा विधियों सहित ज्ञान का उपयोग तथा प्रयोग जानना, अतः आप्त वचन आदरयुक्त विचारों का जो संवेदन है वहीं आगत है।

इस प्रकार आगमिक प्रक्रिया भी वैदिक प्रक्रियाओं की भाँति शिष्य परम्परा से अनवच्छिन्न और अव्यवहित रूप से जनकल्याणकारी होती है। अतः अनच्छिन्नता ,अस्मर्यमाणकर्तृत्व तथा सम्प्रदायाविच्छिन्नता वैदिक तथा आगमिक दोनों ही परम्पराओं में समाधान होने के कारण श्रुतियाँ दो प्रकार की मानी गयी है।[१]

महर्षि यज्ञवल्क्य ने अपनी के व्यवहार काण्ड के दाय भाग प्रकरण में आगम शब्द का प्रयोग लिखित प्रमाण क अर्थ में किया है। विज्ञानेश्वर ने इस अंश की व्याख्या में 'आगमेऽपि बलं नैव मुक्तिः स्तोकापि यत्र नो' का अभिप्राय यह है कि लिखित प्रमाण के होते हुए भी व्यक्ति का स्वत्व प्रयोग सम्बन्धित सम्पत्ति पर स्वल्प भी न हो, तो लेख में कोई बल नहीं माना जायेगा ।अभिप्राय यह

---

[१] मनु.२/६(कुल्लुकभट्ट टीका)।

प्रतीत होता है कि सैद्धान्तिक स्वत्व के होते हुए भी व्यावहारिक स्वत्व के अभाव में वह प्रभावी नहीं होगा। आज की कानूनी भाषा जो कानून (ृ) पारित होते हैं। यदि उनके कार्यान्वयन ज्ज्त्र्मूदह के लिए निगम (ल्ते)

न बनाये जायें तो कानून अपना काम करने में अक्षम होगा। क्योंकि उक्ति है कि शास्त्राण्यधीत्यपि भवन्ति मूर्खाः। ये तु क्रियावान् पुरुषाः ते विद्वान्। अर्थात् केवल सिद्धान्त,व्यवहार ज्ञान के विना अपूर्ण है। यदि इसे आज की भाषा में अभिव्यक्त करे तो निगम शास्त्रों ने युगों में क्रमिक ह्रास का नियम माना है । महर्षि यास्क ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि युग-ह्रास के साथ ऋषि-परम्परा का भी ह्रास प्रारम्भ हो गया अतः श्रेष्ठ-ऋषियों ने अवर ऋषियों को ज्ञान का उपदेश दिया क्योंकि उनका ज्ञान साक्षात् दृष्ट था।[१]

साक्षात्कृत् धर्माणो ऋषियो बभूवुः। तेऽवरेभ्यते ज्ञानं सम्प्राददुः

वही ज्ञान शिष्य -क्रम से आगे बढता गया । अतः दोनो ही वाक्य श्रुति होने की सामर्थ्य रखते हैं। ऋषि शब्द 'हिसा' तथा 'गति' दोनो ही अर्थों में प्रयुक्त माना गया है। चूँकि ब्रह्म से ही पुराणादि विद्याओं का प्रथमतः प्राकट्य हुआ है, पश्चात् उनके चारों मुखों से वेद वेदाङ्गादि का प्रादूर्भाव हुआ। इन्हीं से विद्या, ज्ञान, तपादि की प्राप्ति होती है। इसीलिए इन्हें ऋषि कहा जाता है।

ये ही अव्यक्त ऋषितत्त्व जब निवृत्ति के समय बुद्धि-बल से परमपद को प्राप्त कर लेते हैं, तब उन्हें परमर्षि कहते हैं। जिस ऋषि शब्द की निष्पत्ति गत्यर्थक धातु (ज्ञान, मोक्ष, तथा गमन) से होती है तथा वह स्वयं उत्पन्न होता है और

---

[१]निरुक्त

इसी कारण उसे ऋषिता की प्राप्ति होती है। इस स्थल पर दोनो ही प्रकार के ऋषिगण अभिप्रेत हैं।

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणास्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदाः तस्य विनिसृताः।।
अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा।।[1]
ऋषिहिंसा गतौ धातोर्विद्या सत्यं तपः श्रुतम्।
एष सन्निचयो यस्मात् ब्रह्मणस्तु ततस्वृषिः।।
गत्यर्थाद् ऋषतेर्धातोः नामनिवृति कारणम्।
यस्मादेषे स्वयंभूतस्तस्माच्च ऋषिता गता।।[2]

यथा उपर्युक्त निर्दिष्ट है कि माता पार्वती के प्रश्नों के उत्तर में भगवान शिव ने जो कुछ कहा वही श्रुति-परम्परा शिष्य-प्रशिष्यों के माध्यम से अनवच्छिन्न तथा अव्याहत रुप में आज भी चल रही है। उसकी यही यात्रा आगम है।

''आगतं शिववक्त्रेभ्य गतं च गिरिजामुखे'' का यही अभिप्राय है। श्रुति-परम्परा भी इसी भाँति पल्लवित हुई। दोनो परम्पराओं में कोई अन्तर नही है। ''मनु'' आदि ऋषियों का कथन है कि सदाशिव रुष्ट हो अथवा तुष्ट, उनसे सिद्धि, भोग, राज्य तथा अन्त में मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।[3]

रुष्टाद्वा चाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतो भवेत्।

---

[1] वायु पु.१ पृ.५श्लो.६०-६१

[2] म.पु.१श्लो.८१-८३पृ.५३८

[3] म.पु.अ.१८०ख.१पृ.७५४,श्लो.क८७

भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदाशिवात्।।

यही आप्तवचन है।आप्त क्षीण-दोष हरेता है। वह शील-सम्पन्न होता है। हारीत ने तेरह प्रकार के शीलों का वर्णन किया हैं- ब्रह्मण्यता, देवपितृभक्तता, सौम्यता, अपरोपिता, अनसूयता, मृदुता, अपौरुष्यं, मैत्रता प्रियवादित्वं, कृतज्ञता, शरण्यता, कारुण्यं प्रशान्तश्चेति त्रयोदशशीलम्।[१]

आप्तवचनाादाविर्भूतमर्थविशेषसंवेदनागमः।

उपचारादाप्रवचनम् प्रमाणनियतत्त्वालंङ्कर।।

ये सभी गण आप्त पुरुषों में विद्यमान रहते हैं अतः उनकी वाणी मृषा नही होती।[२]

मनु का कथन है कि आप्त पुरुष सभी वर्णों के कार्यों के साक्षी किये जाने चाहिए।[३]

आप्ता सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः।

सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्।।

इतना ही नहीं किसी भी संशय की स्थिति में इनका निर्णय मान्य होना चाहिए । आप्त पुरुषों के विचारों की मान्यता तथा समय -समय पर उनसे परामर्श लेने की परम्परा ही उस बात में स्पष्ट प्रमाण है कि श्रुत परम्परा से ही इन विचारों का सातत्य प्रमाणित होता है।

---

[१] मनुस्मृति ४/१

[२] मनुस्मृ.२/६ की टीका में उद्धृत् कुल्लुक भट्ट का वचन

[३] मनु स्मृति ८/६३

महर्षि व्यास के शिष्य लोम हर्षण ने अपने पुत्र उग्रश्रवा को पुराणों के अवतरण के विषय में ज्ञान-प्राप्त करने के लिए नैमिषारण्य जाने का आदेश दिया और कहा कि वहाँ जाकर उपस्थित ज्ञानी ऋषियों से पूछकर अपने संशयों का निवारण करें।

उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ में उपस्थित ऋषियों से अपना समाधान पूछा।

तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान्।[१]

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भगवद् गीता में इस अनवच्छिन्न परम्परा का उल्लेख किया है।

इमं विवस्वते योगं ....रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।[२]

ध्यातब्य है कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम पुराणागम परम्परा का स्मरण किया तदनन्तर अन्य शास्त्रों तथा व्रतादि नियमों की स्मृति हुई।

प्रथमं सर्व शास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणास्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिसृताः।
अङ्गानिधर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा।। [३]

इनकी प्रामाणिकता को पुष्ट करते हुए कहा गया है कि पुराण,मानव धर्मशास्त्र,साङ्गवेद, तथा चिकित्सा शास्त्र का प्रभाव अचिन्त्य है और हेतु शास्त्र का आश्रय लेकर इनका निराकरण करना सम्भव नहीं है। यहाँ यह भी

---

[१] प.पु.सृ.अ.१

[२] श्रीमद.भ.गीता.४/१-३

[३] वायु पु.प्र.खं.५५श्लो.६०६१

विचारणीय है कि इनकी रचना नवीन नहीं अपितु विभिन्न ऋषियों द्वारा कल्पान्तरीय शास्त्रों की स्मृत्यातमक आविर्भूति है।

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गोवेदश्चिकित्सितम्।
आज्ञा सिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः।[1]

शासात् शास्त्रम् 'शास् धातु के दो अर्थों में प्रयोग प्रायशः देखे जाते हैं- अध्यापन करना तथा प्रशिक्षित करना । प्रशिक्षित करने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि कर्तव्याकर्तव्य के अनिर्णय की अवस्था में कोई शिष्ट अथवा आप्त पुरुष जिस विचार की प्रेरणा देता है,वहीं कर्तव्य का रूप ग्रहण करता है जैसे अर्जुन ने कहा -

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।[2]

और उनका उपदेश ही युयुत्सा की लडखडाती प्रवृत्ति को उद्बुध करने में सफल हुआ। इसी भाँति विभिन्न युगों के कल्पों में प्रतिष्ठित जीवन पद्धति के तत् -तत् युगों के ऋषियों ने ऋतम्भरा प्रज्ञा की स्थिति में समाहित होकर आविर्भूत किया था। या साक्षात्कार किया और शिष्य-प्रशिष्यों के माध्यम से विभिन्न जीवनोपयोगी विद्याओं का प्रचार किया जो कालान्तर में लिपिबद्ध होकर शास्त्रों के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सभी शास्त्र इसी प्रक्रिया की प्रसूति हैं। सभी मन्वन्तरों में इन्हीं शिष्टाचारों (सदाचारों) को स्मरण करने वाले ऋषियों की परम्पराओं को प्रमाण तथा धर्म का मूल माना जाता है।[1]

---

[1] वायु पु.पृ.२१
[2] भगवद्गीता २/७

वेदः श्रुतिसदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

और इन्हीं के प्रवर्तन तथा पालन को मान्यता दी जाती है जिसे शिष्टाचार कहा जात है।[२]

शिषेर्धातोश्च निष्ठान्ताच्छिष्टशब्दं प्रचक्षते।

आ-समन्तात् गमयति अर्थं इति आगमः इस व्युत्पत्ति को अनुसार सभी शास्त्रों को आगम कहना असमीचीन नही होगा। आगम के अर्थ में एक अन्य शब्द तन्त्र का भी बहुल-प्रयोग मिलता है। इसका भी व्युत्पत्तिलभ्य 'तन्यते विस्तार्यते अर्थाः (प्रयोगाः) अनेन इति तन्त्रम् और प्रायः विभिन्न प्रचलित अर्थों में भी इसका प्रयोग होता है-यथा प्रजातन्त्रम् ,लोकतन्त्रम् आदि।

इनके संग्रह को तन्त्र-प्रबन्ध कहना असमीचीन प्रतीत नहीं होता जैसा कि वाराही तन्त्र में उल्लिखित विषयों से स्पष्ट होता है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च।
देवतानां च संस्थानं तीर्थानां वर्णनं तथा।
तथैवाश्रमधर्मस्य विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानं चैव भूतानां यन्त्राणां चैव निर्णयः।
उत्पत्तिर्विवुधानां च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।

इसपर ऐतिहासिक क्रम से दृष्टिपात किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इनके उल्लेखों के आधार पर उनकी मान्यता है कि इनका अतित्त्व प्रागैतिहासिक काल में भी

---

[१] मनुस्मृति

[२] मत्स्य पुराण पृ.५३५,श्लोक ३३३५

वर्तमान था। उनका कथन है कि महाभारत ने इन्हें देवों तथा सिद्धों की कहानियों का संग्रह माना है। उपनिषद् इन्हें इतिहास के अन्तर्गत मानकर इन्हें पञ्चम वेद मानते हैं।

महान विचारक शङ्कराचार्य ने इन्हें पुरा- नव माना है जिसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में ये नये थे। इनमें वैश्विक विषयों के अनेक महत्वपूर्ण विवरण उत्पन्न है। इन्होंने इनमें प्रधान रूप से ब्रह्मा,विष्णु तथा महेश का विविध विवरण माना है। अपने मूल रूप से ये पुराण ईसा के पूर्व वर्तमान थे।

इन आख्यानों से यह निश्चित रूप से माना जा सकता है कि इन सभी पुराणों की रचना महर्षि व्यास ने की थी। बाणभट्ट जिनका काल सप्तमशती, कुमारिल भटट जिनका काल अष्टमशती तथा शङ्कराचार्य जिनका काल नवमशती माना जाता है।

इस आधार पर ज्ञान कोष ने पुराणों का प्रचलन छठीं तथा सातवीं शती से प्रारम्भ माना जाता है। पुराणों में भारतीय संस्कृति का सामाजिक तथा धार्मिक परिवेश यथा तथ्य विवरण प्रस्तुत किया है। दनकी मान्यता है कि भारतीयों ने कलाकृतियों का भी मूल इनसे ग्रहण किया है।

पुराण वास्तव में भारतीय विद्याओं का विश्वकोश है किन्तु आधुनिक विद्वानों ने इसपर सम्यक् विचार नहीं किया है। भारतीय विद्वानों ने पुराण शब्द का उल्लेख वेदों में भी उपलब्ध होने से इनका काल अत्यन्त प्राचीन माना है। भारतीय

महर्षि यास्क,पाणिनि आदि ने इसे ‘पुराभवम् ’अर्थात् प्राचीन काल में होने वाला माना है।[१]

तथा पाणिनि सूत्र द्वारा इनका अभिप्राय पुरातन माना है। निरुक्तकार ने तो पुरातन होकर भी नया होना अर्थ में प्रयुक्त माना है।[२]

ऋग्वेद में भी अनेक स्थलों (आचार्यो) में प्रयुक्त देखा गया है।[३] इन स्थलों में भी इसका अर्थ प्राचीन ही माना गया है। दूसरी ऋचा में इसका प्रयोग गाथा के विशेषण के रूप में माना गया है।[४]

अथर्ववेद में पुराणों की उत्पत्ति वेदों के साथ ही अथर्ववेद संहिता में उच्छिष्ट से मानी गयी है।[५]

दो स्थानों पर पुराण का नाम आया है जहाँ इसकी उत्पत्ति उच्छिष्ट से मानी गयी है-

(ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषां सह)

उच्छिष्टाञ्जज्ञिरेसर्वेदिविदेवादिविश्रिताः।।[६]

सर्ववेद भाष्यकार श्री माधवाचार्य ने इस मन्त्र को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि सब के नष्ट हो जाने पश्चात् जो शिष्ट (शेष) रहता है,वही परमात्मा ‘उच्छिष्ट’मनु का कथन है कि प्रलयावस्था में -

---

[१] द्रष्टव्य निरुक्त ३/१९

[२] पाणिनि (४/३/२३,२/१/४९,तथा ४/३/१०५

[३] ऋग्वेद ३/५८/६ तथा १०/१३०/६

[४] ऋ.वे.९/९९/४

[५] अथर्ववेद ११/७/२४

[६] पु.परिशीलन पृ.२

आसीदिदं तमोभूतमप्रतर्क्यमनामयम्।

अपरस्परसम्भूतं किमन्यद् कामहेतुकम् ।।[1]

यदि इस स्थिति पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि इस स्थिति का ज्ञाता कोई न कोई सर्वशक्ति सम्पन्न तत्त्व अवश्य था जो प्रलय की स्थिति में भी वर्तमान था। क्योंकि ऐसी स्थिति में पदार्थ अपने केन्द्र से विच्छन्न होकर दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं। ऋग्वेद की भाषा में इसे प्रवर्ग्य तथा अथर्ववेद की भाषा में उच्छिष्ट कहते हैं।[2]

जैसे वपन किया गया बीज अपने छिलके-गूदे आदि को विकीर्ण कर देता है किन्तु उसकी परोक्षण शक्ति शिष्ट रह जाती है और उसका नाश नहीं होता वैसे ही परमात्म शक्ति का स्थूल रूप नष्ट होकर अपने -अपने प्रकृति में समाहित हो जाता है किन्तु मूल रूप बच जाता है, उसी को उच्छिष्ट कहते है।

भागवत पुराण ने इसे 'निषेधशेषोजयतादशेषः'माना है ऐसा नहीं होने परसृष्टि प्रलय की गति स्तभित हो सकती है।

दूसरे मन्त्र में इतिहास तथा पुराण दोनों का नाम मिलता है। यह मन्त्र अथर्ववेद १५/१/६ व्रात्य काण्ड का है। व्रात्य के विषय में यह उल्लेख है कि प्रजापति का प्रेरक है।[3] आचार्य शङ्कर ने बृहदारण्य की व्याख्या में वेद को परमात्मा का निःश्वास माना है और निःश्वास की व्याख्या करते समय उनका अभिप्राय यह है कि जिस भाँति किसी का श्वास प्रश्वास लेने में आयास नहीं करना पडता।उसी

---

[1] मनुस्मृति१/५

[2] पु.परि.पृ.२

[3] पुराणपरिशीलन पृ.२

प्रकार वेदादि ग्रन्थों का आविर्भाव भी परमात्मा द्वारा अनायास ही हो जाता है।शतपथ ब्राह्मण वेदों की भाँति पुराणों को भी नित्य माना है।[१] आरण्यक के दूसरे मन्त्र में में बडे ही मनोरम शब्दों में एक उदाहरण देकर इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।[२]

उनका कथन है कि जिस भाँति जली हुई गीली लकडी से निकले हए धूम के बादल निकल कर अलग-अलग फैल जाते है। उसी प्रकार महती सत्ता के के निःश्वास से निकल कर ऋग.यजु.साम.अथर्वाङ्गिरसः इतिहास तथा पुराण अपना-अपना अस्तित्त्व ग्रहण कर लेते है।

छान्दोग्योपनिषद् ने पुराण को पञ्चम वेद माना है। अभिप्राय यह है कि इन सभी ग्रन्थों का आविर्भाव वेदों के साथ ही हुआ जो अनादि है। अतः इनकी प्राचीनता पर संशय करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यही परमतत्त्व उच्छिष्ट के नाम से अभिहित हैं।[३]

अथर्ववेद में भी व्रात्य को प्रेरक कहकर उसे ‘नीललोहित,ईशान आदि महादेव के नाम से पुराणों में उद्धृत किया गया है।[४]

यजुर्वेद के रुद्राष्टाध्यायी भी इन शब्दों में महादेव की स्तुति की गयी है। ध्यातव्य यह है कि सायणाचार्य ने भी अपने चतुर्वेद भाष्य भूमिका में

यस्य निःस्वसितं वेद यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

---

[१] पु.परि.पृ.१४
[२] बृ.उ.२.४.११
[३] छान्दोग्योपनिषद् १/२
[४] पु.परि.पृ.२

निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ।।[1]

कहकर परमात्मा की स्तुति की है। और उन्होंने भी अनायास वेदादि ग्रन्थों का उद्भव परमात्मासे ही माना है। यह भी उल्लेखनीय है कि यह पुराण, इतिहास,तथा नाराशंसी का भी उल्ल्ेख है, अर्थात् से सभी ग्रन्थ शाश्वत तथा अपौरुषेय माने गये है।[2] इन्हीं सम्बन्धों को ध्यान में रखकर

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः।[3]

यहाँ यह भी प्रमाणित हो जाता है कि पुराण भी गणना विद्या के अन्तर्गत की गयी है।

पुराणों की दो विचारधारओं का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में मिलता है- १वेदधारा तथा दूसरी पुराणधारा । इन्हीं को ऋषिधारा तथा मुनिधाराओं की भी संज्ञा मानते है।[4]

विष्णु पुराण ने भी इसी धारा का समर्थ किया है कि सृष्टि के आदि में सभी कुछ अव्यक्त था केवल प्राधानिक ब्रह्म-पुराण था और उसी से जगत के साथ वेदादि का भी प्रादूर्भाव हुआ।

ना हो न रात्रिर्नन नभो न भूमिः नोसत्तीत्तमो ज्योतिरभुन्नचान्याः।।

श्रोत्रादि बुद्ध्यानुपलभ्मेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्।[5]

---

[1] सायणाचार्य कृत चतुर्वेद भाष्य भूमिका पृ.२

[2] अथर्ववेद १५/१/६

[3] या.स्मृ.उपो.४

[4] मार्कण्डेय पुराण अ.४५श्लो.२०पु.वि.पृ.४१

[5] वि.पु. १/२/२३

उपर्युक्त विवरणो से अत्यन्त स्पष्ट है कि इन समस्त विद्याओं का सूत्र अनादि तथा अव्यक्त है । ये सभी विद्याएँ है, ग्रन्थ नहीं ध्यातव्य है कि भारतीय शास्त्रों का उद्भव किसी अलौकिक व्यक्ति-विशेष द्वारा नही किया गया है, इसी हेतु इनमें नाम समक्ष किसी व्यक्ति विशेष का नाम नही है जैस ईसाई धर्म के साथ ईसा मसीह, मुसलमान धर्म के साथ मुहम्मद साहब यहूदियों के साथ मूसा, जोरोंस्ट्रियन के साथ जरतस्थ आदि। यह वैश्विक अलौकिक ज्ञानराशि सृष्टि आदि मे मन्यद्रष्टा ऋषियों उर्वरमस्तिष्क में स्वतः स्फूर्त हुयी । इसी हेतु इन्हें मन्त्र द्रष्टा कहा जाता है-ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः । इनकी अगणित संख्या थी। इससे यह भी स्पष्ट है कि ज्ञान का कोई निर्माता नही है और न तो सृष्टि में किसी नवीन वस्तु का ही निर्माण है-प्रलयकाल में यह समस्त सृष्टि अव्यक्त में तिरोहित रहती है और सृष्टि में उन्हीं का आविर्भाव होता है-

अव्यक्तात्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवत्यहरागमे।

रात्रागमेप्रलीयन्ते तत्रेवाक्तसंज्ञिके ।[१]

लीन होने का अभिप्राय विनष्ट होना नहीं है। कालान्तर में जब ऋषियों की द्रष्टित्व शक्ति का ह्रास होने लगा तो श्रेष्ट-ज्येष्ठ ऋषियों ने अवरों को ज्ञान का उपदेश किया।

इस भौतिक ज्ञानप्रवाहित की एक सुष्ठु परम्परा चल निकली जो आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। उसका प्रवाह नहीं रुका। यद्यपि लेखन-कला का विकास नहीं हुआ था। इस प्रकार ज्ञान का प्रवाह अबतक अक्षुण्ण बना है।

---

[१] भगवद्गीता ९/१८

ध्यातव्य है कि इन विद्याओं का ऋषियों ने अपने जीवन के प्रत्येक सामाजिक,धार्मिक,सांस्कृतिक अवसरों को प्रयुक्त करने का विधान किया था। सायणाचार्य ने

शतपथब्राह्मण के भाष्य में पाँच वेदों का उल्लेख किया है।[1] जिनका उल्लेख गोपथ ब्राह्मण में मिलता है- सर्प वेद ,पिशाच वेद, असुर वेद ,पुराण वेद तथा इतिहास वेद।[2]

इनमें इतिहास तथा पुराण को वेद माना गया है। ये क्रमशः प्राची से सर्प वेद ,दक्षिण से पिशाच वेद,पश्चिम से असुर वेद,उत्तर से इतिहास वेद ,उर्ध्व तथा अधः दिशाओं से इतिहास तथा पुराण वेद की उत्पत्ति का उल्लेख किया है।[3]

इस भाँति ये सभी विद्याएँ वेदों के साथ ही दृष्ट हुई और उनका प्रयोग प्रारम्भ हो गया।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट है-इनका प्रयोग दैनिक जीवन के सभी सोपानों पर किया जाता था जिससे विद्या की इस स्रोतस्विनी का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। शपतथ ने इसके प्रयोग तथा लाभ का अत्यन्त मनरोरम चित्र स्थापित किया है। उसका कथन है कि जो विद्वान् इन विद्याओं का अध्ययन करता है उसकी दी हुई आहूतियाँ मधु होकर देवों को तृप्त करती है।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि विद्याएँ है तथा अनादि है और कर्ता भी दैनिक कृत्यों, संस्कारों तथा देवार्चनाओं में इनके साक्षात् प्रयोग है।[1]

---

[1] शतपथब्राह्मण (११/५/६/८तथा ११/१/६/१

[2] गोपथब्राह्मण पूर्व भाग ३/१०

[3] गो.ब्रा.१/१०

इतना ही नहीं इनके कृत्यों के पूर्व संकल्प का विधान है जिनमें सृष्टि के प्रारम्भ कृत्य तक के पुराणेतिहासादि का स्मरण किया जाता है जिससे से विस्मृत न हो जायँ और यह प्रचलन आज भी जीवन्त है। ऐसी विद्याओं काल निर्णय करने का प्रयास अनुपयुक्त है, फिर भी आधुनिक दृष्टि से इसपर विचार करना आवश्यक है।

ऋषियों ने इस विद्याओं को समाज से जोडकर अलिखित रूप में भी प्राचीनकाल से ही इसका प्रचार-प्रसार किया है। आज का विज्ञान भी इसका अपलाप नहीं कर सकता । प्राचीन भूगोल ,इतिहास देशादि का निर्देश इन ग्रन्थों में मिलता है और ये प्रतिपादित परम्पराएँ आज भी जीवन्त है। अनादि काल से ही विद्वानों के सत्र चलते थे जिनमें विश्व के कोने-कोने से लोग दण्डकारण्य, नैमिषारण्य, अवन्तिका, पञ्चवटी तथा प्रयागादि स्थानों में पर्व विशेषों पर उपस्थित होकर उनपर विचार करते थे। शङ्काओं का समाधान होता था ,कलिवर्ज्यों का प्रतिपादन किया जाता था। अतः इन विद्याओं का नैरन्तर्य कभी अवरुद्ध अथवा विलीन नहीं हुआ। इन विद्याओं का प्रचलन आज भी है ।

शास्त्रों में अगम प्रमाण की चर्चा है जिसे शब्द प्रमाण भी कहते हैं। आगम का अभिप्राय उन विद्याओं से था जिनका ऋषियों ने स्वयं साक्षात्कार कर अपने शिष्यों को वितरित किया था। इन्हें आप्त प्रमाण या आप्तोपदेश भी कहा जाता था। मनु ने इन उपदेशों को भी वेदादि की भाँति ही धर्म का मूल माना है। ऋषिगण द्रष्टा होने के कारण आप्त थे। उनका उपदेश राग,द्वेष तथा अनृत से सर्वथा मुक्त था। फलतः इनका वचन गुरु-शिष्य परम्परा से आज भी जीवन्त है।

---

[१]शपथ ११/५/६.८तथा ११/५/७-९

उपदिष्ट विद्याओं को व्यवहार में जीवन्त रखने का यही सम्बन्ध था। इसी हेतु कुल्लूकभट्ट ने श्रुतियों के दो भेदों का विवेचन किया है-१आगमिक तथा नैगमिक पुराणादि विद्याएँ इसी आगमिक परम्पराओं की देन हैं। ये ही परम्पराएँ आगे चलकर एक स्वतन्त्र पद्धति के रूप में विकसित हुई। इन सभी विद्याओं का ऋषि दर्शन है।

अतः इनके काल का निर्णय अत्यन्त कठिन ही नहीं असाध्य भी है किन्तु आधुनिक विद्वानों ने अपनी क्षमताओं के अनुसार इनका निर्णय तथा निर्धारण करने का प्रयास किया है। इन परम्पराओं में सिद्धान्त तथा प्रक्रिया दोनों का ही समावेश है। श्रुतिवाक्य तहाँ सिद्धान्त प्रतिपादित करते है ,वहीं ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थ प्रक्रियाओं को सम्पादित करने की विधियों का विधान करते हैं। इस प्रकार विधि-निषेध तथा अर्थवादों का वर्णन पुराणेतिहास में मिलता है।

विद्वानों ने पुराणों के काल-निर्धारण का प्रयास किया हैं। जबकि पारम्परिक विद्वान इनको अनादि विद्या मानते हैं। इनके काल के विषय में भी विचार करना आवश्यक है ।

ऋग्वेद,अथर्ववेद,ब्राह्मण,आरण्यक,उपनिषद् आदि प्राचीनतम आदि ग्रन्थों में उल्लेख होने से इनका प्रादूर्भाव ऋषियों की मेधा से ही सृष्टि के आदि में ही माना गया है जिसके आधार पर भारतीय आज भी सांस्कृतिक तथा दैनिक कर्मकाण्ड में संकल्प के माध्यम से आदिकाल से अबतक की प्रक्रिया पूरी क्रिया विना कोई कार्य सम्पादित नहीं करते जिससे हम अपनी पौराणिक तथा ऐतिहासिक कर्म भूल न सके। इस भाँति जो साक्षात् ऋषि-दृष्ट श्रुतियाँ हैं,वे

निगम है और जो श्रुतपरम्परा से प्राप्त है,वे आगम है। दोनों ही एक ही मूल की होने के कारण नित्य तथा प्रामाणिक हैं।

आधुनिक विद्वानों ने इनके प्रादुर्भाव के समय का विचार किया है,अतः उसपर एक दृष्टिपात करना समीचीन होगा। आधुनिक अनेक विद्वानों ने इन्हें कल्पित कहानियाँ माना है किन्तु गवेषणात्मक बुद्धि वाले कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने अपने और अपनी परम्पराओं का आश्रय लेकर इन ग्रन्थों पर मनन करना प्रारम्भ किया है। विष्णु पुराण के अनुवादक एच.वित्सन ने माना है कि ईसा के ३००वर्ष पहले तो पुराणों की रचना हुई है किन्तु पुराणों की रचना इतनी प्राचीन सिद्ध की जा सकती है कि पृथिवी के किसी जाति की कल्पना में वह नहीं आ सकती । ईडन पार्जिटर ने भी इन्हें अत्यन्त प्राचीन काल की रचना मानी है।[१] (आधुनिक भारतीय वैज्ञानिक श्री चन्द्रशेखर ने गणितीय तथ्यों के आधार पर सृष्टि का काल दो अरब वर्ष माना है।) रायल सोसइटी लन्दन द्वारा इस खोज का समर्थन कर उन्हें सोसाइटी का सदस्य बनाकर उन्हें सम्मानित किया गया था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्वान डॉ.मोल्टन ने सन् १९२७में पृथिवी को दो अरब वर्ष माना है जिसे भूगर्भ शास्त्र ने भी स्वीकार किया है।[२]

पुराणों में निहित सृष्टि विवरणों से इनकी उपस्थिति से पुराणों के काल का अनुमान लगाया जा सकता है। मैडम बलावत्स्की ने अपने खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ सिक्रेटडाक्ट्रीन द्वितीय भाग

प्राचीन विद्वानों की यह मान्यता है कि पुराण समझ लेने की विद्या है। इस हेतु आर्य जाती का यह विश्वास रहा है और आज भी है किउसके एक अक्षर की भी

[१] पुराण मंथन,आचार्य भास्करानन्द लोहनी,प्राक.पृ.३

[२] पुराण मंथन,आचार्य भास्करानन्द लोहनी,प्राक.पृ.१९

न्यूनाधिकता होने पर कर्म फल-विफल हो जाता है। इसीलिए प्रत्येक अक्षर को ध्यान पूर्वक ज्यो का त्यो स्मरण रखना आवश्यक है। पाद-विन्यास,वाक्यरचना,आनुपूर्वी आदि पर विशेष ध्यान रखा जाता है। जो पाठ प्रक्रिया वेदों में अपनाई जाती है,वहीं पुराणों में भी विहित है। अतएव दोनों का अनादि विद्या होना सिद्ध है । एक बात और विचारणीय है कि ऋग्वेद का एक ग्रन्थ है जिसे अघमर्षण नाम से जाना जाता है। इसका विनियोग प्रायः सभी कर्मों में विहित है। अघमर्षण शब्द का अर्थ है-पाप प्रक्षालन यह मन्त्र अत्यन्त सारगर्भित है। इस मन्त्र की व्याख्या सृष्टि के आदि के विषय में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संदेश देती है।

(१) सृष्टि के पूर्व 'ऋत' तथा सत्य आदि कर्ता के रूप में अव्यक्तावस्था में वर्तमान थे उस शक्ति ने आत्म-निरीक्षण किया। इस क्रिया को 'तप'कहते है।

२-इसका अभिप्राय यह है कि अमूर्त ने अपने मूर्त रूप का ध्यान किया इसका अभिप्राय हुआ अपने को व्यक्त करने की इक्षा 'एकोऽहंबहुस्याम् प्रजायै' अर्थात् इसका अर्थ हुआ एक का अनेक रूपों में विस्तृत हो जाना और अपने पूर्व में स्थित रहते हुए भी अनेक हो जाना । इसी को तप कहते हैं। अर्थात् सूक्ष्म रूप (ऋत्) का अपने व्यक्त रूप (सत्य) में विशदिकृत्य हो जाना।

एक अलौकिक दृष्टान्त से इसे और स्पष्ट किया जा सकता है जैसे 'वट-बीज' अपने मूल में 'वट-वृक्ष' को अव्यक्तावस्था में समाहित रखता है(अव्यक्त रखता है)वहीं बीज अपनी शक्ति को वट -वृक्ष के रूप में व्यक्त करता है जो अनेक वट तथा बीजों में विस्तार करता हुआ भी उससे अलग भी होता है। दार्शनिक

भाषा में यह तप है। इसी हेतु ब्रह्म शब्द भी अपनी नित्य-व्यापक सत्ता तथा अपने मूल में रहते हुए कर्ता' बनकर व्यक्त होता है- ''द्वेरूपे ब्रह्मणीवेदितव्ये''

और उसमें कर्तव्य व्यक्त हो जाता है। इसी से यह भी स्पष्ट होता है कि सृष्टि-प्रलय का अनादि काल से चला आ रहा है अर्थात् यह प्रवाह अनादि है और इसका ज्ञान भी अनादि है जिसका वर्णन पुराणों का विस्तृत वर्ण्य विषय है। अतः पुराण भी अनादि विद्या है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि वेद की विस्तृत तथा प्रामाणिक व्याख्या के लिए इसका ज्ञान अपेक्षित हो।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पुराण की कल्पना ब्रह्मा के द्वारा ही वेदों के आविर्भाव के साथ पुराणों की भी आविर्भूति हुई।

३-धातायथापूर्वमकल्पयत् ' पद यही सिद्ध करता है कि सृष्टि-रचना नवीन नहीं है । इसमें पूर्वानुगामी सृष्टि-विषयों का पुनरावर्तन भी हुआ है(पुराणं सर्वशास्त्राणां ब्रह्मणां प्रथमं कृतम्)।

४-इसमें भी आगमिक दृष्टि से सृष्टि की प्रक्रिया का समावेश किया गया है। आगम शास्त्र की मान्यमता है कि शब्दार्थ में अविनाभाव सम्बन्ध है । शब्द उच्चरित होते ही अर्थ की उत्पत्ति हो जाती है । महान आगमिक श्री भर्तृहरि ने स्पष्ट ही कहा है।

५-वैयाकरण शब्द-अर्थ में तादाम्य सम्बन्ध मानते हैं और उस सम्बन्ध को नित्य मानते है। शब्द के उच्चरित होते ही अर्थ का उद्बोधन हो जाता है जैसे वृष कहते ही वृषाकार साक्षात् हो जाता है । इसक अभिप्राय यह है कि शब्द-तत्त्व में ही अर्थ तत्त्व का नित्य समावेश रहता है। गोस्वामी तुलसी दास जी ने

इसका अत्यन्त सटीक उदाहरण दिया है-''गिरा-अर्थ जल-वीचिसम,कहियतभिन्न न भिन्न । वन्दऊ सीताराम पद जिनहि परमप्रिय खिन्न'' अर्थात् शब्द तथा अर्थ में कथन मात्र की भिन्नता है, वास्तविक नही।शक्ति-शक्तिमान में अभेद सम्बन्ध है- शक्ति के बिना शक्तिमान का अस्तित्व नहीं रहता है और न ही व्यक्त होता है। दोनो का एक मूल है जो अनादि तथा अनिधन है। शक्तिमान अर्थ बनकर व्यक्त होता है किन्तु उसी में अविनाभाव से समाहित रहता है। अभिप्राय यह है कि जिस शक्ति से वेद-व्यक्त हुआ उसी से वेद-वर्णित पुराणादि भी निःसृत हुए। एक मूलता के कारण दोनो ही अनादि हैं जिनका काल-निर्धारण असङ्गत है।

(६) वेद ने 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' कहकर स्वतः ही इसका निराकरण कर दिया है। इतना ही नही इस मन्त्र का नित्य-सन्धादि में समाविष्ट कर इसकी

अक्षुण्णता भी प्रतिपादित कर दी है। महामहोपाध्याय पं. गिरधार शर्मा चतुर्वेदीजी ने पाश्चात्य विद्वानो द्वारा अनुमानित काल की सम्भावना का भी निराकरण कर दिया है। उनकी मान्यता है कि विल्सन, पर्जिटर आदि द्वारा निर्धारित काल ऊपयुक्त नही है क्योकि वैदिक काल से लेकर परवर्ती काल तक के सभी महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं पर इनका प्रभाव है।[१]

धार्मिक तथा भारतीय प्रमाणो के अतिरिक्त उन्होंने भारतीयेतर प्राचीनता सुतरां प्रमाणित हो जाती है। भारत में ईसा की प्रथम शताब्दी में ही एक यूनानी पर्यटक डियोन क्रायस्टोन मुगल भ्रमण पर आया था। उसने दक्षिण के मलवार प्रान्त में कुछ काल तक निवास किया था। अन्य विवरणों के अतिरिक्त यह भी

[१] पुराणपारिजात उद्धृत पृ.३६

उल्लेख किया है कि भारत मे एक लाख श्लोक का संकलित (यूनानी भाषा का ऐतिहासिक महाकाव्य)।

यह एक लाख श्लोकों का इतिहास हमारा महाभारत ही है। इसका निर्माण उत्तरी भारत मे हुआ था। दक्षिण भारत तक इसके प्रचार में कम से कम २०० वर्ष लगा होगा क्योंकि उस काल में मुद्रण-कला का विकास नही हुआ था। लोकमान्य गङ्गाधर तिलक तथा महाभारत मीमांसा के लेखक श्री चिन्तामणि विनायक राव ने माना है।[१] इस महाभारत में पुराणों का उल्लेख है ।

इससे यह प्रमाणित होता है कि पुराणों की रचना 'महाभारत' के पूर्व हो चुकी थी । अंग्रेजी के विद्वान फिडरिक ने शक् सम्वत की चौथी-पाँचवी शती में जावा-बाली द्वीपों में वहाँ की ओलन्दज भाषा में 'ब्रह्माण्डपुराण' का अनुवाद देखा जाता था। यह पुराण अष्टादश पुराणों में अन्तिम गिना जाता हैं।

इन प्रमाणों से पुराणों की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है । प्रमाणों के अतिरिक्त ज्योतिषीय गणना के आधार पर इनकी अनादि रचना मानना कदापि अनुचित नही है।

स्मृतिकारों मनु ने पितृश्राद्ध के श्रवण तथा वाचन का विधानमान्य किया है :-

स्वाध्यायं श्रावये पित्र्ये धर्मशास्त्राणिचैव हि।

आख्यातानीतिहासाश्च पुराणानिखिलानि च।।[२]

---

[१] उद्.पुराण परिशीलन पृ.३७

[२] मनु. ३/२३२

महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो वेद की चौदह-विद्याओं के अन्तर्गत इनका समावेश किया है-

पुराण-न्याय-मीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिता:।
वेदा: स्थानानिविद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश:।।[1]

इन चतुर्दश विद्याओं को मनीषियों ने वेद का अङ्ग माना है।अर्थात् वेद अङ्गी है पुराणादि अङ्ग है। अङ्गी की सत्ता अङ्गों पर ही निर्भर है। इस भाँति वैदिक वाङ्मय से लेकर प्राचीन परम्पराएँ जो आज की वर्तमान हैं और कर्मकाण्ड में इनका वर्तमान रहना यह प्रमाणित करता है कि पुराण अपने नाम के अन्वर्थक होता है,वे भारतीय वाङ्मय की सभी विद्याओं में वर्तमान रहने के कारण नित्य हैं।भगवद्गीता भी स्पष्टतया यह प्रतिपादित करती है।

अर्थात् सृष्टि का नाश नही होता। उसका तिरोधान तथा प्राकट्य होता है। इससे यह स्वत: ही प्रमाणित हो जाता है कि मनु की यह उक्ति 'वेद शब्देभ्यएवादौ पृथक् संस्था च निर्ममे।''

इस प्रसङ्ग में यह भी विचारणीय है कि जिस ज्ञानकी गहराई से ऋषियों अपनी बातें कही है, उसकी गूढता को समझने के लिए यहाँ के धार्मिक ग्रन्थों प्रचलित परम्पराओं को पूरी तरह अवगत किये बिना कोई मी मनमाना निर्णय भारतीय परम्परा का अपमान है।

किसी नाटककार की यह उक्ति है कि-

अब्धिल्लंधित एव वानरभटै: किन्त्वस्य गम्भीरतां आयालनिमग्नजीवरतनु:
जानातिमन्थाचल:।।

---

[1] याज्ञ.स्मृ.उपोद्घात श्लोक ३

आज भी भारतीय संस्कृति के सभी उपादानों में वैदिक परम्परा के अङ्गभूत पौराणिक परम्परा जीवन्त है। अत: उसे अनादि मानना ही समीचीन प्रतीत होता है।

कोई ऐसी विद्या नही है जिसका विवरण पुराणों में न हो - इसका संकेत भी स्वतः पुराण ही दे देते है-

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैः गायामिः कल्पबुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थ विशारदः।।[१]

श्रीधराचार्य की टीका में इसका विवरण विस्तार पूर्वक मिलता है -

स्वयं दृष्टार्थ कथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतार्थस्य च कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।।

आख्यान का अभिप्राय है स्वयं उदबुद्धज्ञान का कथन कराना और सुनी बात का कथन उपाख्यान कहा जाता है। गाथाएं बहुत प्राचीन विवरण है। वेद के ब्राह्मण भाग में भी बहुत सी गाथाएं है। कल्प शुद्धी का अभिप्राय है धर्म शास्त्रों में वर्णित कर्मकाण्ड का विज्ञान तथा बुद्धिजीवियों का विचार ।

संहिता का अर्थ है संकलन अर्थात् अनुभवों का विशदीकरण तथा उन्हें परम्परा में अनुगत कर स्मृति का रुप देना। इस भाँति पुराण वैदिक ज्ञान को आगमिक

[१]पु.परि. पृ.२६ विष्णु-पुराण अंश ३ अध्याय ६/१५

रुप देने के स्वरुप है- उनका व्यावहारीकरण है- अतः वेद ही है। अतः उनको संहिता कहना समीचीन है। इस भाँति नाम तथा स्वरुप से ये वेदमूलक तथा अनादि ज्ञान के पल्लवित रुप हैं।

ङङङङङ